तिरुमल तिरुपति देवस्थान

सप्तगिरि

सचित्र मासिक पत्रिका

जुलाई - 2019 रु.5/-

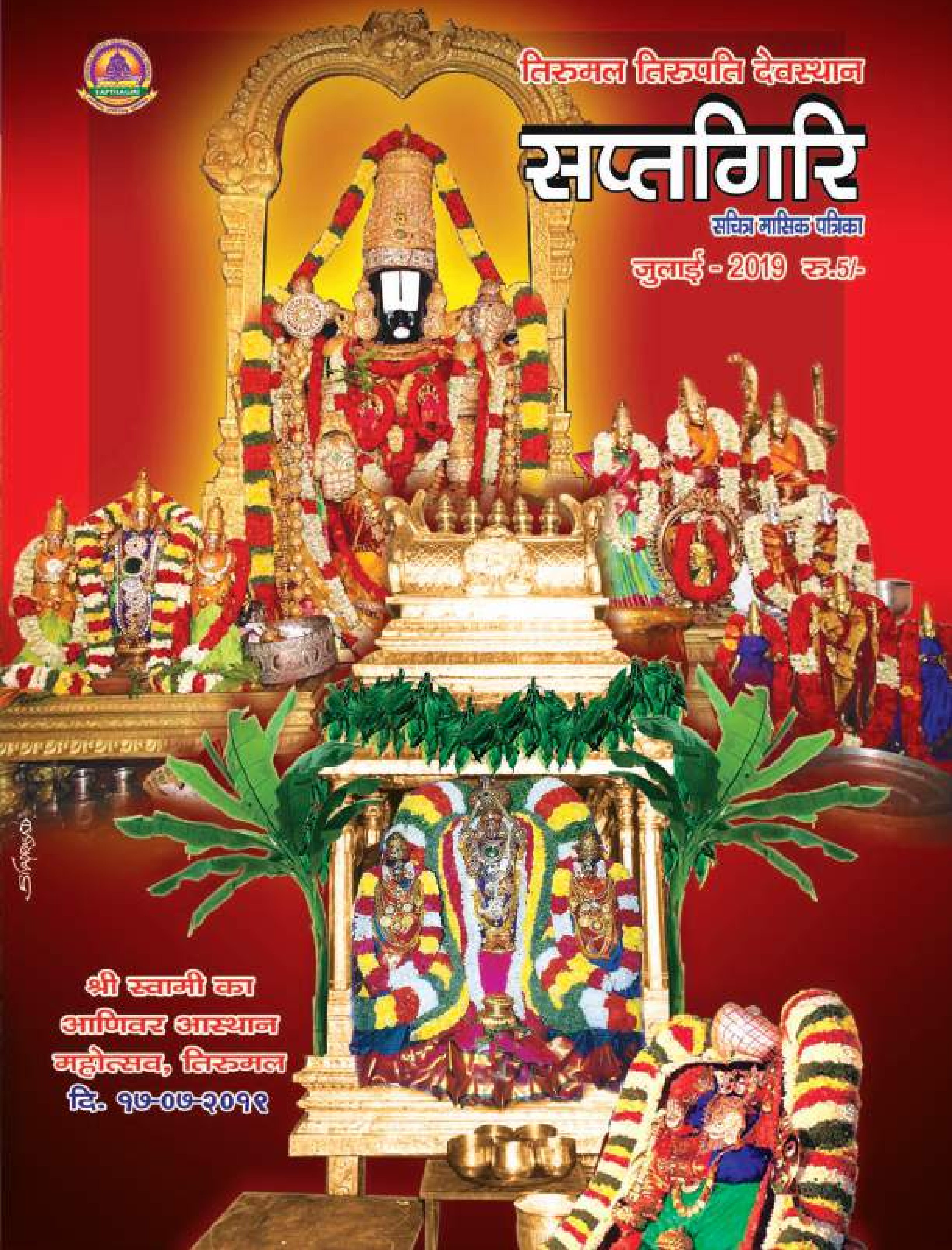

श्री स्वामी का
आणिवर आस्थान
महोत्सव, तिरुमल
दि. १७-०७-२०१९

नूतन दूल्हा (श्रीवारु)

विवाह वेदी

नूतन दूल्हिनें (श्रीदेवी, भूदेवी)

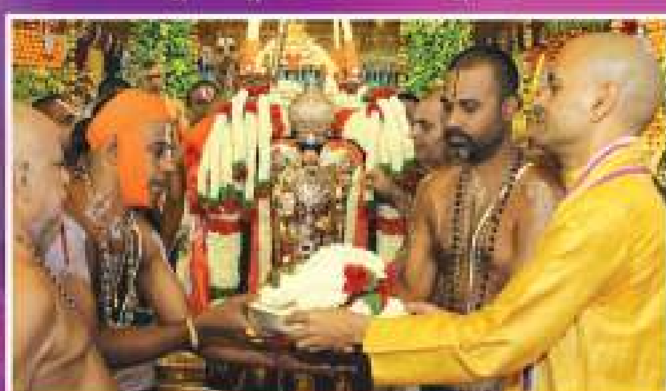

ति.ति.दे. कार्यनिर्वहणाधिकारी के द्वारा
श्रीहरि को फूल माला समर्पण

अश्ववाहन पर
श्रीहरि

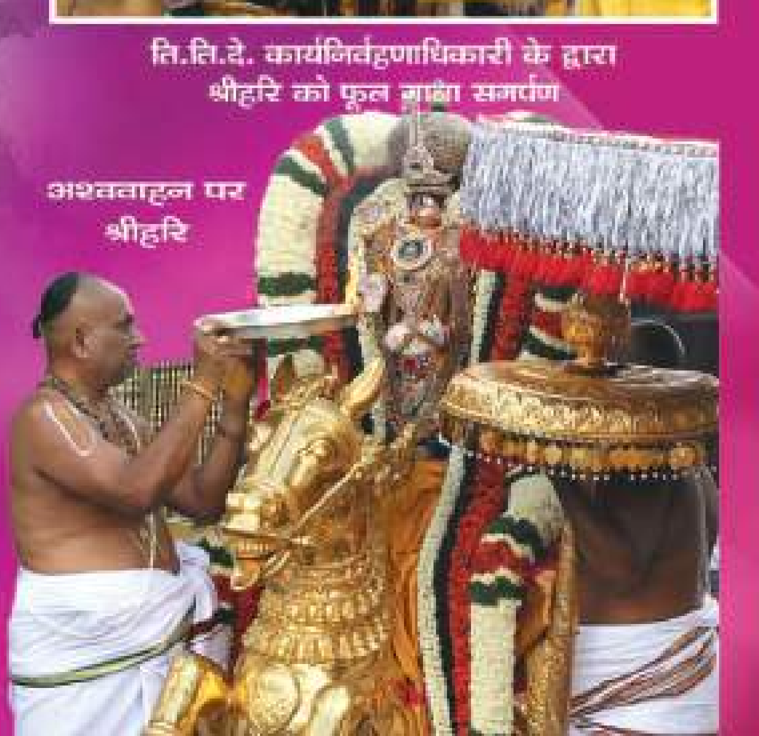

गरुडवाहन पर श्रीहरि

सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः।
(- श्रीमद्भगवद्गीता १७-३)

हे भारत! सभी मनुष्यों की श्रद्धा उनके अंतःकरण के अनुरूप होती है। यह पुरुष श्रद्धामय है। इसलिए जो पुरुष जैसी श्रद्धावाला है, वह स्वयं भी वही है।

विस्फोटकादयो देहे न बाधन्ते कदाचन।
लभेत् कृष्णपदे दास्यं भक्तिं चाव्यभिचारिणीम्।।
(- गीता मकरंद, गीता की महिमा)

गीताभ्यास में लीन लोगों के शरीर पर छाले एवं फोडे आदि नहीं होते। वे भगवान श्रीकृष्ण के चरण कमलों में अर्पित होकर दास्य एवं निश्चल भक्ति को प्राप्त होते हैं।

श्री वेंकटेश्वर अन्नप्रसाद ट्रस्ट

तिरुमल, तिरुचानूरों में हजारों की संख्या में भक्तों को प्रतिदिन अन्नप्रसाद वितरण होने की बात भक्तों को विदित ही है। अब ति.ति.दे. अन्नप्रसाद ट्रस्ट ने भक्तों, दाताओं को दान देने का और खूना अक्सर देना चाहता है। इसलिए एक दिन दान की योजना प्रवेश कर रहा है।

एक रोजाना खर्च -

१. एक दिन - ३० लाख

२. अल्पाहार - ७ लाख

३. मध्याह्न भोजन - ११.५० लाख

४. रात्रि भोजन - ११.५० लाख

इस नकद को दाताओं से संग्रहित करने के लिए सिद्ध हो रहा है तिरुमल तिरुपति देवस्थानों का अन्नदान ट्रस्ट। दाताओं - व्यक्तियों/कंपनियों/संस्थाओं/ट्रस्टों/संयुक्त ढंग की व्यवस्था हो सकती है। ये रोजवारी नकद कुल ३० लाख या अल्पाहार - ७ लाख या दोपहर का भोजन - ११.५० लाख / रात्रि भोजन - ११.५० लाख प्रदान कर सकते हैं। दाताओं को ति.ति.देवस्थान के द्वारा आयोजित सुविधाएँ एक रीत होंगी।

अन्य विवरण के लिए संपर्क करें -

विशेषाधिकारी, श्री वेंकटेश्वर अन्नप्रसाद ट्रस्ट,

ति.ति.दे. प्रशासनिक भवन, के.टी.रोड, तिरुपति।

(www.tirumala.org वेबसाइट में भी दरसा सकेंगे)

दूरभाषा - ०८७७-२२६४२५८, ०८७७-२२६४३७५, ०८७७-२२६४२३७.

(सूचना - उपर्युक्त विषयों पर परिवर्तन होनी की संभावना है।)

सप्तगिरि

वेङ्कटाद्रिसमं स्थानं
ब्रह्माण्डे नास्ति किञ्चन,
वेङ्कटेश समो देवो
न भूतो न भविष्यति।

तिरुमल तिरुपति देवस्थान की
सचित्र मासिक पत्रिका

वर्ष-५० जुलाई-२०१९ अंक-०२

विषयसूची

मारनेरि नम्बि	श्रीमती शिल्पा केशव रांदड	07
चातुर्मास व्रत	श्रीमती प्रीति ज्योतीन्द्र अजवालिया	10
श्री नाथमुनि स्वामीजी	श्री गोविंद मधुसूदन रांदड	12
मानव के जीवन में गुरु का स्थान	डॉ.टी.पद्मजारानी	15
तिरुमल श्री बालाजी का आणिवर-आस्थान महोत्सव	श्री पी.वी.लक्ष्मीनारायण	17
शरणागति मीमांसा	श्री कमलकिशोर हि. तापडिया	21
भागवत कथा सागर ध्रुव द्वारा भगवत्प्राप्ति	श्री अमोघ गौरॉंग दास	23
श्री रामानुज नूट्रंदादि	श्री श्रीराम मालपाणी	26
सनातन भारतीय जीवन आश्रम व्यवस्था	श्री वेमुनूरि राजमौलि	31
श्री प्रपन्नामृतम्	श्री रघुनाथदास रान्दड	35
तप द्वारा पूर्ण सफलता	श्री अमोघ गौरॉंग दास	37
कोनेटिराया! कीलपट्लाधीशा!!	डॉ.बी.के.माधवी	39
सत्संग और भक्ति	श्री अंकुश्री	43
मंदिर-पुजारी व्यवस्था (अर्चकाचार्य)	डॉ.एस.पी.वरलक्ष्मी	45
आचार्य का जवाब	श्रीमती आर.प्रेमारामनाथन	47
ईश्वर ही हमारा सच्चा साथी है	श्री गजानन पाण्डेय	50
अत्ति वरदर	श्री के.रामनाथन	52
राशिफल	डॉ.केशव मिश्र	53

गौरव संपादक
श्री अनिलकुमार सिंघाल, आई.ए.एस्.,
कार्यनिर्वहणाधिकारी, ति.ति.दे.

प्रधान संपादक
डॉ.के.राधारमण

संपादक
डॉ.वी.जी.चोक्कलिंगम

उपसंपादक
श्रीमती एन.मनोरमा

मुद्रक
श्री आर.वी.विजयकुमार, बी.ए., बी.एड्.,
उपकार्यनिर्वहणाधिकारी,
(प्रचुरण व मुद्रणालय),
ति.ति.दे. मुद्रणालय, तिरुपति।

श्री पी.शिवप्रसाद,
सेवानिवृत्त चित्रकार, ति.ति.दे., तिरुपति।

स्थिरचित्र
श्री पी.एन.शेखर, छायाचित्रकार, ति.ति.दे., तिरुपति।
श्री बी.वेंकटरमण, सहायक चित्रकार, ति.ति.दे., तिरुपति।

website: www.tirumala.org or www.tirupati.org वेबसैट के द्वारा सप्तगिरि पढ़ने की सुविधा पाठकों को दी जाती है। सूचना, सुझाव, शिकायतों के लिए - sapthagiri_helpdesk@tirumala.org

सूचना

मुद्रित रचनाओं में व्यक्त किये विचार लेखक के हैं। उनके लिए हम जिम्मेदार नहीं हैं। *– प्रधान संपादक*

अन्य विवरण के लिए:

CHIEF EDITOR, SAPTHAGIRI, TIRUPATI - 517 507.
Ph.0877-2264543, 2264359, 2264360.

मुखचित्र
श्रीवारि आणिवर-आस्थान महोत्सव, तिरुमल।
चौथा कवर पृष्ठ
श्री विखनसाचार्य, तिरुपति।

जीवन चंदा .. रु.500-00
वार्षिक चंदा .. रु.60-00
एक प्रति .. रु.05-00
विदेशियों को वार्षिक चंदा .. रु.850-00

संपादकीय

गुरु स्साक्षात् पर ब्रह्म

"गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरु स्साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः।।"

गुरु को त्रिमूर्तियों का प्रतिरूप माना जाता है। भगवान और गुरु को हम एक ही समान देखते हैं। हैन्दव संस्कृति में गुरु को अत्यन्त विशिष्ट तथा पवित्र स्थान दिया जाता है। लौकिक या अलौकिक विद्यावों को सीखने में गुरु की जितनी आवश्यकता होती है, हम शब्दों में व्यक्त नहीं कर सकतें। इसीलिए कहते है कि- 'बिना गुरु की विद्या अन्ध विद्या है'।

लौकिक परिज्ञान से अवलोकन करने पर लगता है कि अक्षरों को सिखानेवाला 'गुरु' हैं। मानव जाति को भगवान की सान्निध्य में जाने का मार्गदर्शन करनेवाला ही गुरु है। पर अक्षरज्ञान होनेवाला कोई भी व्यक्ति अक्षरों को सिखा सकता है। तो गुरु कहलाने के लिए और क्या करना चाहिए? विद्या के साथ-साथ बुद्धि की शिक्षा भी देनी चाहिए। आँखों के सामने लौकिक रूप में जो कुछ भी दिखाई पडता है, वह जीवन नही है। भाषा, स्पर्श तथा दृष्टि से परे अलौकिक आत्मानंद प्रदान करनेवाले अन्तर्यामि को अनुभव में लानेवाला ही असली गुरु है। इतना ही नही ब्रह्मसान्निद्य के लिए पग आगे ले जानेवाला भी सद्गुरु माना जाता है।

गुरु का चयन करने में ही शिष्य की प्रतिभा ज्ञात होती है। अन्तर्यामी को समझने से ज्यादा, उत्तम गुरु की अस्तित्व को पहचानना ही शिष्य के लिए परिक्षा का विषय है। गुरु राजमार्ग के समान है। गम्य पहुँचने के लिए चुना गया मार्ग सुगम हो, तो हम सुरक्षित रूप से वहाँ पहुँच सकते हैं। यदी ऐसा नही हुआ, तो पूरा अगम्य गोचर होते है। इसलिए गुरु के प्रति शिष्य को और शिष्य के प्रति गुरु को अव्याजानुराग के साथ-साथ अपार गौरवाभिमान भी होना चाहिए।

त्रिकरणशुद्धि के साथ ज्ञानार्जन करनेवाला शिष्य को गुरु का उपचार करना चाहिए। गुरु से परे और कोई शास्त्र या योग नहीं है। ऐसी दृढ़ विश्वास के साथ गुरु की सेवा करनी चाहिए। तब जाकर गुरु बिना कुछ माँगे सब सिखाते हैं। अज्ञानांधकार हट जाने वाला रास्ता दिखाता है।

ज्ञानार्जन शिष्य को परमार्थ जानने के लिए एक गुरु का होना आवश्यक है। यह बात सही है। पर बिना गुरु के, कुछ नही जाननेवाले मकडी, विषसर्प और हिंसा के अलावा सही जीवन मार्ग न जाननेवाले भक्त तिन्नडु को क्या मुक्ति प्राप्त नही हुई? इसका मतलब यह नही है कि उनको कोई गुरु का मार्गदर्शन नही मिला। उनके मन में बसी अचंचल अन्य दृष्टि न होनेवाली भक्ति भावना ही गुरु है। अज्ञात होना अलग बात है और ज्ञात होना अलग। लेकिन हमारी स्थिति न इधर की है और न उधर की। लौकिक और अलौकिक के बीच डोलायमान की स्थिति है। इसीलिए हमें हाथ पकडकर चलानेवाला चाहिए। ऐसे व्यक्ति को हमे लगातार ढूँढना चाहिए। ऐसे जिज्ञासु शिष्य को ढूँढते हुए स्वयं भगवान ही गुरु के रूप में आयेंगे।

अज्ञान, बीवी-बच्चे, अनुलग्नक जैसे चक्र में हम जी रहे हैं। आँखें खोलने पर घने अंधकार ही दिखाई पडते हैं। थोडा प्रयास करके उन टीलों को पार कर चट्टान के ऊपर आने पर सूरज का दर्शन होगा। ऐसे सूर्य किरण मन को स्पर्श करने से हम महर्षि बन सकते जाते है। उस प्रकार बनने के लिए जिज्ञासु बनकर, श्रद्धा-भक्ति से एक सद्गुरु के आश्रय (शरण) में जाना चाहिए, विनति करना चाहिए, आराधन करना चाहिए। वही साक्षात् परब्रह्म स्वरूप गुरु को समर्पित करने वाला गुरुपूजोत्सव पुष्पान्जलि है।

व्यासो नारायणो हरिः

मारनेरि नम्बि

- श्रीमती शिल्पा केशव रांदड

तिरुनक्षत्र - ज्येष्ठ मास, आश्लेषा नक्षत्र

अवतार स्थल - पुरांतकम् (पाण्ड्य नाडु में एक गाँव)

आचार्य - श्री यामुनाचार्य स्वामीजी

परमपद प्राप्त स्थान - श्रीरंगम्

मारनेरि नम्बि श्री यामुनाचार्य स्वामीजी के प्रिय शिष्य थे। चौथे वर्ण में पैदा हुए स्वामी, श्रीरंगनाथ भगवान और उनके आचार्य श्री यामुनाचार्य स्वामीजी के प्रति लगाव के कारण श्रीरंगम् में जाने जाते थे।

इन्हें मारनेरि नम्बि कहके भी सम्भोदित करते हैं - जो मारन (श्री शठकोप स्वामीजी) की तरह गुणों से सम्पन्न हैं।

यह श्री यामुनाचार्य स्वामीजी के कालक्षेप सुनने में और श्रीरंगनाथ भगवान के गुणानुभव में पूरी तरह से जुट जाने के लिए मशूर थे। राग-अनुराग के अतीत, भव-बन्धनों से विमुक्त होकर श्रीरंगम् मंदिर के प्राकार में ही अपना जीवन बिता रहे थे।

अन्तिम दशा में श्री महापूर्ण स्वामीजी (जो अपने प्रिय सखा) से विनती करते हैं कि उनके अन्तिम संस्कार का भार खुद स्वीकार करें और उनके देह सम्बन्धि रिश्तेदारों को उनकी तिरुमेनि (दिव्य रूप) को न सौंपें क्योंकि वह श्रीवैष्णव नहीं हैं। उनके शरीर की तुलना हविस (यज्ञ में समर्पण किया जाने वाला) से करते हुए बताते हैं कि वह वस्तु केवल भगवान को समर्पण करने लायक है और कोई अन्य लोग उसे छूना भी नहीं चाहिए। श्री महापूर्ण स्वामीजी उनकी प्रार्थना को स्वीकार करते हैं और मारनेरि नम्बि के परमपद प्रस्थान होने के बाद उनका चरम कैंकर्य विधिपूर्वक करते हैं। उनके वर्ण के कारण स्थानिक वैष्णव श्री महापूर्ण स्वामीजी के इस कार्य को अस्वीकार करते हैं और उनसे चुनौती करते हैं। उनके इस कार्य के बारे में श्रीरामानुज स्वामीजी से शिकायत करते हैं। श्रीरामानुज स्वामीजी श्री महापूर्ण स्वामीजी के जरिये मारनेरि नम्बि की महानता की स्थापना करना चाहते थे और इसी कारण से श्री महापूर्ण स्वामीजी के पास जाकर उनसे प्रश्न करते हैं। श्रीरामानुज स्वामीजी उनसे पूछते हैं कि ''मैं एक तरफ सभी जनों के दिमाग में शास्त्र के प्रति भक्ति और विश्वास बढ़ाने की कोशिश कर रहा हूँ और आप दूसरी तरफ ऊपरी तौर से शास्त्रों के विरुद्ध काम क्यों कर रहें हैं? (यहाँ शास्त्र का मतलब विशेष शास्त्र - भागवत कैंकर्य)''। श्री महापूर्ण स्वामीजी जवाब देते हैं कि ''भागवत कैंकर्य करने के लिए हम किसी और को नियमित नहीं कर सकते हैं। कैंकर्य स्वयं को करना चाहिए। जटायु का अन्तिम संस्कार श्रीराम ने किया है। मैं श्रीराम से बड़ा नहीं हूँ और वह जटायु से कम नहीं हैं - इसलिए उनके लिए कैंकर्य करना दोष रहित हैं। श्री शठकोप स्वामीजी के पयलुम् शुडरोळि (श्रीसहस्रगीति) और नेडुमार्केडिमै (श्रीसहस्रगीति) भागवत शेषत्व को गौरवान्वित करना केवल सिद्धांति नहीं हैं। उनके दिए गए दिव्य उपदेशों में से हमें कम से कम कुछ विषयों का पालन करने की कोशिश करना चाहिए।'' यह सुनकर श्रीरामानुज स्वामीजी बहुत प्रसन्न होते हैं और श्री महापूर्ण स्वामीजी को दण्डवत प्रणाम करते हैं और घोषणा कर देते हैं कि श्री महापूर्ण स्वामीजी ने वास्तव में एक महान कार्य ही किया हैं। यह सुन्दर संवाद को अति सुन्दरता

अवतार उत्सव (०५.०७.२०१९) के संदर्भ में...

से श्री वरवरमुनि स्वामीजी ने श्रीपिल्लै लोकाचार्य स्वामीजी के श्रीवचन भूषण के २३४वें सूत्र के व्याख्यान में लिखा है।

कैसे नम्बिजी का वैभव उपरोक्त व्याख्यान में कुछ जगह पर प्रकाश डाला गया हैं।

१. तिरुप्पावै २९ - आई जनन्याचार्यर् व्याख्यान - इस पाशुर के व्याख्यान में श्री महापूर्ण स्वामीजी और श्रीरामानुज स्वामीजी के बीच में घटित सम्वाद का वर्णन किया गया है। मारनेरि नम्बि के अन्तिम दिनों में उन्होंने बहुत शारीरिक बाधायें झेलि। उस समय वह चिन्तित हो जाते हैं कि उनके अन्तिम क्षण में वह भगवान पे ध्यान नहीं कर सकेंगे। उनकी दशा देखकर श्री महापूर्ण स्वामीजी श्रीरामानुज स्वामीजी से पूछते हैं कि क्या मारनेरि नम्बि परमपद प्राप्त करेंगे। श्रीरामानुज स्वामीजी जवाब देते हैं कि अवश्य उन्हें परमपद प्राप्त होगा क्योंकि श्री वराह भगवान ने अपने वराह चरम श्लोक में बताया है कि जो कोई भी उन्हें आश्रय किये हैं वो उनके बारे में सोचेंगे और उनके अन्तिम समय में परमपद अनुग्रह करेंगे। श्री महापूर्ण स्वामीजी कहते हैं कि इन शब्दों को स्वीकार नहीं कर सकते हैं क्योंकि यह हो सकता हैं कि केवल अपने दया (भूदेवी के प्रति उनकी प्रेम) के कारण उन्होंने कहा होगा और वास्तव में अपने वचन की पूर्ती नहीं भी कर सकते हैं। श्रीरामानुजस्वामीजी कहते हैं कि अम्माजी हर समय भगवान के साथ रहती हैं और उन्हें उस समय संतुष्ट करने के लिए ऐसा कुछ भी नहीं कहेंगे। श्री महापूर्ण स्वामीजी उनसे प्रमाण माँगते हैं जहाँ बतलाया गया है कि भगवद् विषय में संलग्न हुए भक्तों को मोक्ष मिला है। श्रीरामानुज स्वामीजी कृष्ण भगवान के गीता का ४.१० श्लोक बताते हैं - ''जन्म कर्म च मे दिव्यम् एवं यो वेति तत्वत्ः त्यक्त्वा देहम् पुनर् जन्म नैति मामेति सोर्जुना'' करते हैं कि जो भगवान के जन्म और कार्यकलाप जो सच्ची तौर से जानेंगे, वह अपने जीवन के अन्त में परमपद प्रस्थान जरूर होंगे। श्रीरामानुज स्वामीजी के इन शब्दों को सुनकर श्री महापूर्ण स्वामीजी संतुष्ट हो जाते हैं।

२. पेरिय तिरुमोळि ७.४ - पेरिय वाच्चन् पिळ्ळै के व्याख्यान के प्रस्तावन में - इस पदिग (कंसोरा वेंकुरुति), तिरुमंगै आळ्वार् ने तिरुसेरै सारनाथ एम्पेरुमान् के आश्रित श्रीवैष्णवों का कीर्तन करते हैं। यहाँ श्री महापूर्ण स्वामीजी मारनेरि नम्बि का अन्तिम संस्कार पूर्ती करने का विषय सूचित किया जाता है।

३. मुदलतिरुवन्दादि १- श्री कलिवैरिदास स्वामीजी व्याख्यान - यहाँ बताया जाता है कि - अगर कोई मारनेरि नम्बि से यह पूछे कि कैसे भगवान को याद रखे, तब भगवान को भूलने का रास्ता बताने के लिए उत्तर देते हुए पूछते हैं (क्योंकि उनका ध्यान एम्पेरुमान् पर निरंतर लग्न रहता हैं और उन्हें भूलना वह सोच भी नहीं सकते)।

४. श्री वचन भूषणम् (३२४)- श्रीपिल्लै लोकाचार्य स्वामीजी ने इस अनुच्छेद में श्रीवैष्णवों का कीर्तन किया हैं और स्थापित करते हैं कि एक खास

वर्ण में पैदा होने के कारण श्रीवैष्णव की महानता कम नहीं होती है। कई उदाहरणों में से उन्होंने श्री महापूर्ण स्वामीजी श्रीरामानुज स्वामीजी को मारनेरि नम्बि के अन्तिम संस्कार करने का विवरण देते हैं। श्री वरवरमुनि स्वामीजी अपने सुन्दर व्याख्यान में इस सम्वाद का सार बहुत अच्छी तौर से बताते हैं।

५. आचार्य हृदय ८५ - अळगिय मणवाळ पेरुमाळ नायनार्, अपने बड़े भाई श्रीपिल्लै लोकाचार्य स्वामीजी का अनुगमन करते हुए - इस चुरनिकै में इसी घटना का प्रस्ताव करते हुए मारनेरि नम्बि की कीर्ति पे प्रकाश डालते हैं।

इस प्रकार मारनेरि नम्बि के जीवन के कुछ झलक देखे हैं। श्री यामुनाचार्य स्वामीजी के प्रति बहुत प्रीति रहने वाले मारनेरि नम्बि के श्रीकमल चरणों को अपना प्रणाम समर्पण करें।

टिप्पणी : मारनेरि नम्बि का तिरुनक्षत्र पेरिय तिरुमुडि अडैवु में आषाढ़ मास, आश्लेषा नक्षत्र लिखा गया लेकिन वाळि तिरुनाम में ज्येष्ठ मास, आश्लेषा नक्षत्र लिखा गया है।

मारनेरि नम्बि तनियन

यामुनाचार्य सच्छिष्यम् रंगस्थलनिवासिनम्।
ज्ञानभक्त्यादिजलधिम् मरनेरिगुरुम् भजे।।

तिरुमल तिरुपति घाट रोड में यान करनेवाले यात्रियों के लिए विज्ञापन

नीचे सूचित समयों के बीच वाहनदारों का प्रवेश रद्ध कर दिया गया है।

१. द्विचक्रवाहन - रात ११.०० बजे से प्रातःकाल ४.०० बजे तक

२. अन्य वाहन (कार और बस) - अर्थरात्रि १२.०० बजे से प्रातःकाल ३.०० बजे तक

३. कुछ अनिवार्य कारणों के कारण उपर्युक्त समयों में परिवर्तन होने की संभावना है।

सूचना - तिरुमल-तिरुपति घाट रोड से यात्रा करनेवाली मोटर घाडीवालें अपना वाहनों से संबंधित 'बार कोड रसीद' को स्कॉनिंग करना अनिवार्य है।

चातुर्मास व्रत

- श्रीमती प्रीति ज्योतीन्द्र अजवालिया

श्रीवैष्णव समाज में एकादशी और चातुर्मास व्रत का महत्व अधिक है। आज हम यहाँ आषाढ शुक्ल एकादशी याने के ''देवशयनी एकादशी'' और चातुर्मास के बारे में अनुसंधान करेंगे। 'देवशयनी एकादशी', 'पद्मनाभा एकादशी' नाम से भी प्रचलित है। सूर्य जब मिथुन राशि में प्रवेश करता है तब यह माह की एकादशी को देवशयनी एकादशी कहते है। इस पवित्र दिन से चातुर्मास का प्रारंभ होता है। इस दिन से सृष्टि पालनहार श्रीहरि विष्णु भगवान क्षीरसागर (पाताल लोक) में जाकर आराम शयन करते है। इसलिये ये एकादशी को हम देवशयन एकादशी कहते है।

श्रीहरि विष्णु क्षीरसागर में शयन क्यों करते है?

पुराण में बताया है कि श्रीहरि विष्णु भगवान क्षीरसागर में निवास करते है। हमारा प्रश्न यह है कि क्षीरसागर में क्यों निवास करते है? इस विषय में सुंदर कथा है कि श्रीहरि विष्णु भगवान वामन स्वरूप लेकर असुरराज बलि के यहा यज्ञ में पधारे, और भिक्षा में तीन डग जमीन मांगा। जिसमें प्रथम डग में पृथ्वी, आकाश सब दिशाये मांगली, दूसरे डग में सब लोक को माप लिया, तीसरे डग के लिये कुछ बचा ही नही, तब बलिराजा ने कहा कि प्रभु तीसरा डग मेरे शिर पर रख के मुझे धन्य बनादो और अपनी शरण में ले लो। श्रीहरि ने तीसरा डग बलिराजा के सिर पर रख दिया और पाताल लोक का अधिपति बना दिया, तब श्रीहरि ने प्रसन्न होकर वर मांगने को कहा, तब बलिराजा ने सदा के लिए अपने साथ पाताल में रहने के लिए कहा। अब तो श्रीहरि बलि के बंधन में आ गये, इस घटना से श्री लक्ष्मीजी बहुत चिंतित हुआ, इस वक्त श्रीहरि को बलि के बंधन से मुक्त करवाने के लिये उन्होने बलिराजा को अपना भाइ बनाया और रक्षाबंधन पर्व पर बलिराजा की कलाइ पर राखी बांधी। बलिराजा ने भेंट और पुरस्कार मांगने को कहा तब श्री लक्ष्मीजी ने अपने भाइ से अपने पति परमेश्वर की पाताल लोक से मुक्ति मांगी। बलिराजा ने श्रीहरि को मुक्त किया तब श्रीहरि ने वचन दिया की मैं आषाढ शुक्ल एकादशी से लेकर कार्तिक शुक्ल एकादशी तक क्षीरसागर में निवास करुंगा। आषाढ शुक्ल एकादशी देवशयनी एकादशी के नाम से प्रचलित होगी और कार्तिक शुक्ल एकादशी देवोत्थान एकादशी के नाम से प्रचलित रहेगी इसलिए प्रभु श्रीहरि विष्णु भगवान चातुर्मास के दौरान क्षीरसागर में निवास करके योग निद्रा में रहते है।

चातुर्मास व्रत के अवसर पर...

चातुर्मास का महत्व

चातुर्मास दौरान श्रीहरि क्षीरसागर में निवास करते है, चार माह तक पाताल लोक में रह कर योग निद्रा करते है और कार्तिक शुक्ल एकादशी को क्षीरसागर से बाहर आकर पुनः वैकुण्ठ में विराजते है। इस चातुर्मास के दौरान यज्ञोपवित संस्कार, विवाह संस्कार, जात संस्कार, दीक्षा ग्रहण संस्कार, यज्ञ, गृहप्रवेश आदि शुभ कर्म वर्जय माने जाते है। इसका प्रमुख कारण यह है कि इस चातुर्मास दौरान वर्षाऋतु रहती है। श्रीहरि क्षीरसागर में निवास करते है इसलिए इस दौरान सूर्य-चंद्र, सब वर्षाऋतु की वजह से निस्तेज बनता है, इसलिए कोई शुभ कार्य नही होता है।

वर्षाऋतु के कारण चारो ओर कीटक, बाक्टिरिया का उपद्रव बढता है बारिश की वजह से पाचन शक्ति मंद हो जाती है। शरीर में पित्त प्रकोप बढता है। इसलिए ज्यादा खाना हमारे शरीर के लिए नुकशान कारक होता है। जब शरीर स्वस्थ नही रहता है तब मन भी अस्वस्थ रहता है। इसलिए हमारे ऋषिमुनियों ने और, शास्त्रों ने बताया कि चातुर्मास दौरान शरीर और मन को स्वस्थ रखने के लिए हमे उपवास, फलाहार और एक टंक भोजन करना फायदामंद रहेगा।

चातुर्मास में त्यजने वाली बाबत

चातुर्मास के दौरान हमारे शास्त्र ने कई बात बताई है। यह माह दौरान कम से कम प्रयाण करे, एक ही स्थान में स्थिर रहके अधिकतम प्रभु नाम स्मरण करने का महत्व है। खास करके भजन में लीन बनके भोजन से दूर रहने की आज्ञा हमारा शास्त्र देता है। विशेष रूप से श्रावणमास में शाकभाजी, भाद्रपद में दही, आसो मास में दूध और कार्तिक मास में दवीदल, अनाज से दूर रह कर उपवास करने का महत्व है।

श्रीकृष्ण ने दिया युधिष्ठिर को चातुर्मास का मार्गदर्शन

(१) चातुर्मास दौरान देव मंदिर में जाकर मंदिर और आंगन में सफाइ करके आंगन में रंगोली बनाते है, ये सात जन्म तक ब्राह्मण कुल में जन्म लेता है।

(२) श्रीहरि को पंचामृत से अभिषेक कराने से भक्त को सारुप्य मुक्ति प्राप्त होती है।

(३) नित्य श्रीविष्णुसहस्रनाम जप कर तुलसीपत्र से अर्चना करते है इसे वैकुंठ में स्थान मिलता है।

(४) पीपल पेड की परिक्रमा करने से सत्यलोक की प्राप्ति होती है।

(५) श्रीहरि चरणामृत का सेवन करने से शरणागति मिलती है।

(६) श्रीहरि के पावन मंदिर में त्रिकाल गायत्री मंत्र का अनुसंधान करने से जीवात्मा पाप मुक्त हो जाता है।

(७) धर्म अध्ययन पूजा पाठ करने से प्रतिष्ठा बढती है।

(८) नित्य सूर्य नमस्कार, गणेश वंदना करने से आरोग्य एवं ऐश्वर्य प्राप्त होता है।

(८) अष्टाक्षर मंत्र (ॐ नमो नारायणाय) के अनुष्ठान से अक्षय अनंत फल प्राप्त होता है।

चातुर्मास का नित्यक्रम

चातुर्मास के दौरान श्रीहरि विष्णु भगवान की नित्य पंचोपचार से पूजा-आराधना और पंचामृत से अभिषेक करके नित्य श्रीविष्णुसहस्त्रनाम का पाठ करने से श्रीहरि विष्णु भगवान प्रसन्न होते है। इस तरह भगवान श्रीहरि हमारे कल्याण हेतु चातुर्मास व्रत माहात्म्य बता के हमारे लिए शरणागति का परमपद का मार्ग निश्चित कर दिया है।

जय श्रीमन्नारायण

श्री नाथमुनि स्वामीजी

- श्री गोविंद मधुसूदन रांदड

तनियन

नमः चिन्त्यादभुताक्लिष्ट ज्ञान वैराग्य राशये।

नाथायमुनयेगाध भगवद्भक्ति सिन्धवे।।

तिरुनक्षत्र : ज्येष्ठ मास, अनुराधा नक्षत्र

अवतार स्थल : श्री वीरनारायणपुरम

आचार्य : श्री शठकोप स्वामीजी

शिष्य : श्री नाथमुनि स्वामीजी के ग्यारह विख्यात शिष्य थे। इन सबों में श्री पुंडरीकाक्ष स्वामीजी, लक्ष्मीनाथाचार्य स्वामीजी, श्रीकृष्ण स्वामीजी, कुरुकानाथ स्वामीजी।

श्री नाथमुनि स्वामीजी वीरनारायणपुरम नामक नगर में ईश्वर भट्ट नामक किसी ब्राह्मण श्रेष्ठ के यहाँ उनके पुत्र रूप में कलियुग के तीन हजार चौबीस वर्षो के बीत जाने पर शोभकृत संवत्सर के ज्येष्ठ पूर्णिमा तिथि के दिन अनुराधा नक्षत्र में श्री विश्वक्सेन के अंश से श्री नाथमुनि का अवतार हुआ। श्री ईश्वर भट्टजी की भगवद्भक्ति उत्कृष्ट थी। श्री नाथमुनि स्वामीजी श्री राजगोपाल भगवान के सन्निकट में ही जाते और सेवा करते थे।

एक दिन आपकी इच्छा हुई की आप भगवान के अवतार स्थल मथुरा, अयोध्या आदि स्थलों में जाकर उन स्थानों में विध्यमान श्री विग्रह के दर्शन करे। आपकी यह प्रार्थना सुनकर भगवान ने आपको जाने का आदेश दिया। भगवान की अज्ञा पाकर स्वामीजी वीरनारायणपुरम से उत्तर भारत के दिव्य देशों, अभिमान देशों की यात्रा के लिए अपने पिता, पुत्र और अन्य कुटुम्ब सदस्यों के साथ मथुरा, वृन्दावन्, गोवर्धन धाम, द्वारका, बद्रीनाथ, नैमिषारण्य इत्यादि दिव्य धामों के लिये प्रस्थान किए।

इस वर्ष का अवतार उत्सव दि. १३ जुलाई २०१९

यमुना नदी के तट पर स्थित गोवर्धनपुर गाँव, श्री नाथमुनि स्वामीजी को बहुत ही प्रभावित किया। यहाँ निवास करते हुए सकल कला कुशल, नटवर नागर, वेषधारी श्रीकृष्ण भगवान की नित्य सेवा करते थे। इसी बीच भगवान राजगोपाल ने एक दिन स्वप्न दिया कि तुम अब मेरी सन्निधि में चले आओ। फिर भगवान श्रीकृष्ण कि आज्ञा पाकर आप श्री वीरनारायणपुरम लौट जाते है।

श्री शठकोप सूरि विरचित श्री शारंगपानी विषयक दस गाथाओं को सुनकर प्रसन्नता का अनुभव करते हुए बोले कि इन गाथाओं का सतत पाठ करना चाहिए। तदनंतर सहस्त्रगीति की सभी गाथाओं को प्राप्त करने की मनोकामना भगवान से व्यक्त की। भगवान उन्हे ताम्रपर्णि नदी के तीर कुरुकानगरी में श्री शठकोप सूरि के सन्निधि से उसे प्राप्त करने की आज्ञा देते है। कुरुकानगरी में आप की मुलाकात श्री परंकुश स्वामीजी से होती है। श्री परांकुशदास स्वामीजी कहते है कि अब इस भूमंडल पर उस सहस्त्रगीति की सिर्फ १० गाथाएँ ही बची है बाकी सब लुप्त हो गई है। उन पाशुरों को प्राप्त करने का एक ही उपाय है। यदि आप १० गाथाओं का बारह हजार बार श्री वकुलाभरण स्वामीजी के समक्ष बैठ कर पाठ करें तो हो सकता है सूरि प्रसन्न होकर उस समस्त ग्रंथ को प्रदान कर दे। श्री परांकुश स्वामीजी के बताये हुए क्रम के अनुसार श्री नाथमुनि स्वामीजी पारायण प्रारम्भ करते है। श्री नाथमुनि के इस पारायण से प्रसन्न हो कर लक्ष्मीजी के पुरुषकार से श्री शठकोप स्वामीजी प्रकट होकर अपना शिष्यत्व प्रदान कर उन्हे अष्टांग योग का परिपूर्ण ज्ञान और आळवार संतों द्वारा रचित ४००० दिव्य प्रबंध पाशुर अर्थ सहित प्रदान करते हैं।

श्री भविष्यदाचार्य स्वामीजी का श्री विग्रह सबसे पहले श्री शठकोप स्वामीजी ने श्री नाथमुनि स्वामीजी

को ही प्रदान किया था। जिसके दर्शन हम आज भी श्री आल्वार तिरुनगरी में कर सकते है।

श्री नाथमुनि स्वामीजी दिव्यसंगीत के भी महा विद्वान थे। एक समय, उस गाँव के राजा एक साधारण और विशेष गायक के बीच कोई अंतर नही कर पा रहे थे। नाथमुनि स्वामीजी ने अति सरलता से अंतर पहचान कर इस समस्या को सुलझा दिया। राजा ने यह देख उसने नाथमुनि स्वामीजी की संगीत की प्रवीणता की परीक्षा लेनी चाही, तब नाथमुनि स्वामीजी जवाब देते है कि, वह ४००० झांझो की सम्मिलित ध्वनि सुनकर, एक एक झांझ की ध्वनि और उसके वजन का अनुमान कर सकते हैं। यह सुन राजा को नाथमुनि स्वामीजी की संगीत में प्रवीणता समझ आती हैं, राजा नाथमुनि स्वामीजी को ढेर सारा धन देकर गौरवान्वित करते हैं। पर भौतिक सुखों को तुच्छ समझने वाले और सर्वथा अपरिग्रह का व्रत पालन करने वाले नाथमुनि स्वामीजी, इस धन संपत्ति के लिए कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं करते है और राजा को आशीर्वाद एवं धन्यवाद प्रदान कर भगवान राजगोपाल की सन्निधि में पधारते है।

अपने दिव्य ज्ञान, अपने अष्टांगयोग की साधना से भविष्य को देखते हुये, अपने पौत्र का आगमन देखते है, अपने पुत्र ईश्वर मुनि से कहते है कि उसका नाम यामुनाचार्य रखना (याने श्रीकृष्ण प्रेम के कारण यमुना नदी से संबन्धित)। और अपने शिष्यों से वचन मांगते है कि उसको सभी शास्त्रों का ज्ञान प्रदान कर शास्त्र ज्ञान में निपुण बनाना।

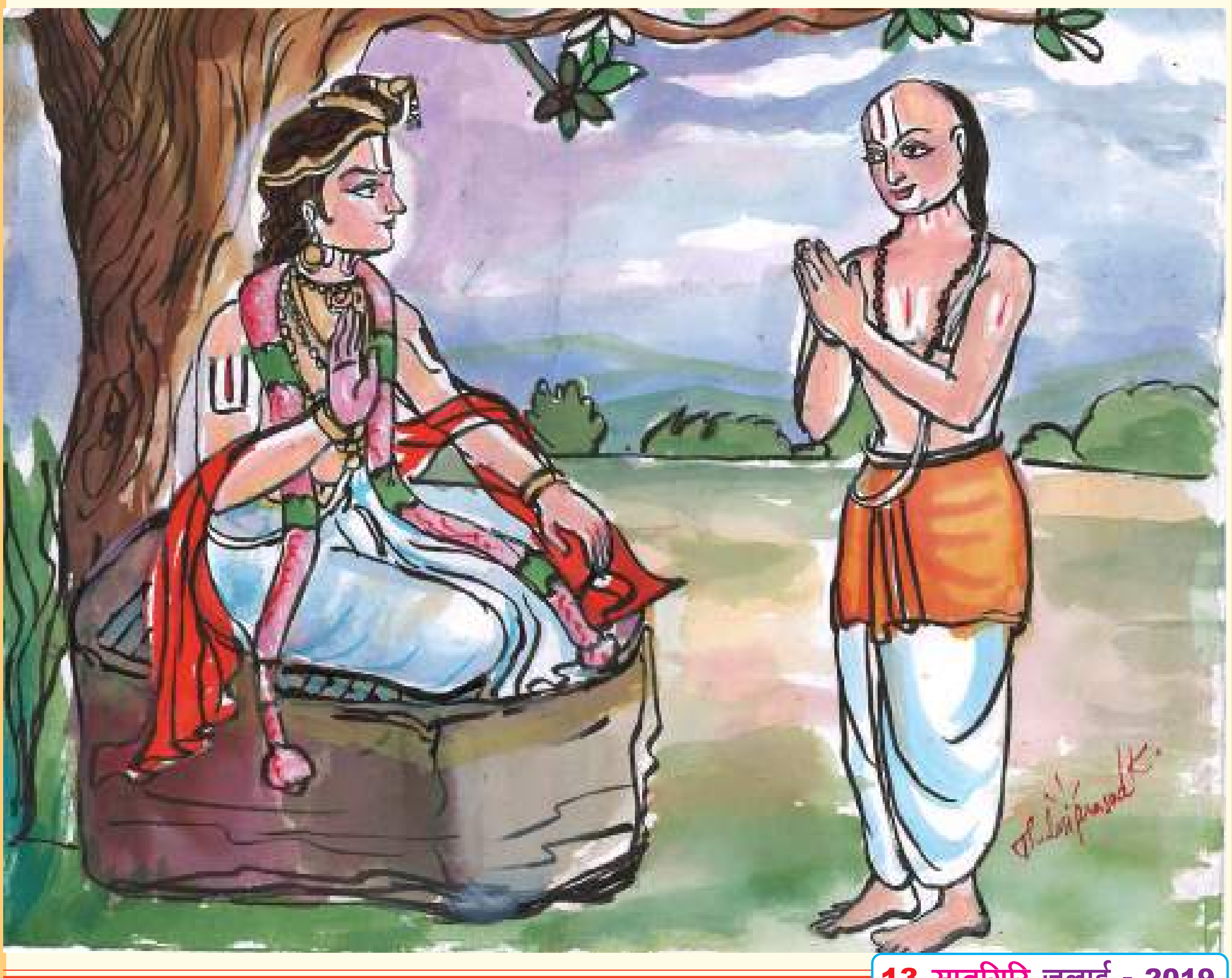

अपना अंतिम समय निकट जान कर नाथमुनि स्वामीजी, आस-पास की परिस्थितियों से विस्मरित हो भगवान राजगोपाल के ध्यान में निमग्न रहते थे। एक दिन उनसे मिलने राजा और रानी आते है। ध्यानमग्न स्वामीजी को देख, राजा और रानी लौट जाते है। प्रभु प्रेम, लगन और भक्ति में मग्न, नाथमुनि स्वामीजी को ऐसा आभास होता है की भगवान श्रीकृष्ण गोपियों के साथ आए और उनको ध्यानमग्न अवस्था में देखकर वापस लौट गये है, अपने इस आभास से दु:खी हो श्री नाथमुनि राजा और रानी की ओर दौड़ते है।

अगली बार शिकार से लौटते हुए राजा, रानी, एक शिकारी, एक वानर के साथ उनसे मिलने के लिए आते हैं। इस बार भी नाथमुनि स्वामीजी को ध्यान मग्न देख, राजा फिर से लौट जाते हैं। नाथमुनिजी को इस बार यह लगता हैं की श्रीरामचन्द्र, माता सीता, लक्ष्मणजी और हनुमानजी उन्हें दर्शन देने पधारे हैं, पर उन्हें ध्यान मग्न देख लौट गये और इसी आभास में, नाथमुनि उनके दर्शन पाने उनके पीछे दौड़ते हैं। जब वह छवि उनकी आँखों से ओझल हो जाली हैं, भगवान से वियोग सहन न कर पाने के कारण नाथमुनि मूर्छित हो प्राणों को छोड़ देते हैं और परमपद प्राप्त कर लेते है। यह समाचार सुनकर तुरन्त ईश्वर मुनि, शिष्य वृंद के साथ वहाँ पहुँचते हैं और उनके अन्तिम चरम कैंकर्य करते है।

नाथमुनि स्वामीजी के प्रयास से प्राप्त इन दिव्य प्रबंधों के कारण ही आज श्रीवैष्णव साम्प्रदाय का ऐश्वर्य हमें प्राप्त हुआ हैं। इनके बिना यह प्राप्त होना दुर्लभ था। श्री यामुनाचार्य स्वामीजी, (नाथमुनि स्वामीजी के पौत्र) अपने स्तोत्र रत्न में नाथमुनि स्वामीजी की प्रशंसा प्रारम्भ के तीन श्लोकों में करते है।

पहले श्लोक में बताते हैं कि "मैं उन नाथमुनि को प्रणाम करता हूँ जो अतुलनीय हैं, विलक्षण हैं और एम्पेरुमानार् के अनुग्रह से अपरिमित ज्ञान भक्ति और वैराग्य के पात्र हैं।

दूसरे श्लोक में कहते हैं कि "मैं उन नाथमुनिजी के चरण कमलों का, इस भौतिक जगत और अलौकिक जगत में आश्रय लेता हूँ जिन्हें मधु राक्षस को वध करने वाले भगवान श्रीकृष्ण के पाद कमलों पर परिपूर्ण आस्था, भक्ति और शरणागति ज्ञान हैं"।

तीसरी श्लोक में कहते हैं कि " मैं उन नाथमुनिजी की सेवा करता हूँ जिन्हें अच्युत के लिए असीमित प्रेम हो निजज्ञान के प्रतीक हैं, जो अमृत के सागर हैं, जो बद्ध जीवात्माओं के उज्ञीवन के लिए प्रकट हुए हैं, जो भक्ति में निमग्न रहते हैं और जो योगियों के महा राजा हैं।

उनके अन्तिम और चौथे श्लोक में भगवान से विनंती करते हैं कि, उनकी उपलब्धियों को न देखकर, बल्कि उनके दादा श्री नाथमुनि स्वामीजी की उपलब्धियाँ और शरणागति देखकर मुझे अपनी तिरुवेडी का दास स्वीकार कीजिये।

इन चारों श्लोक से हमें नाथमुनि स्वामीजी के महान वैभव की जानकारी होती हैं।

मानव के जीवन में गुरु का स्थान

- डॉ.टी.पद्माजारानी

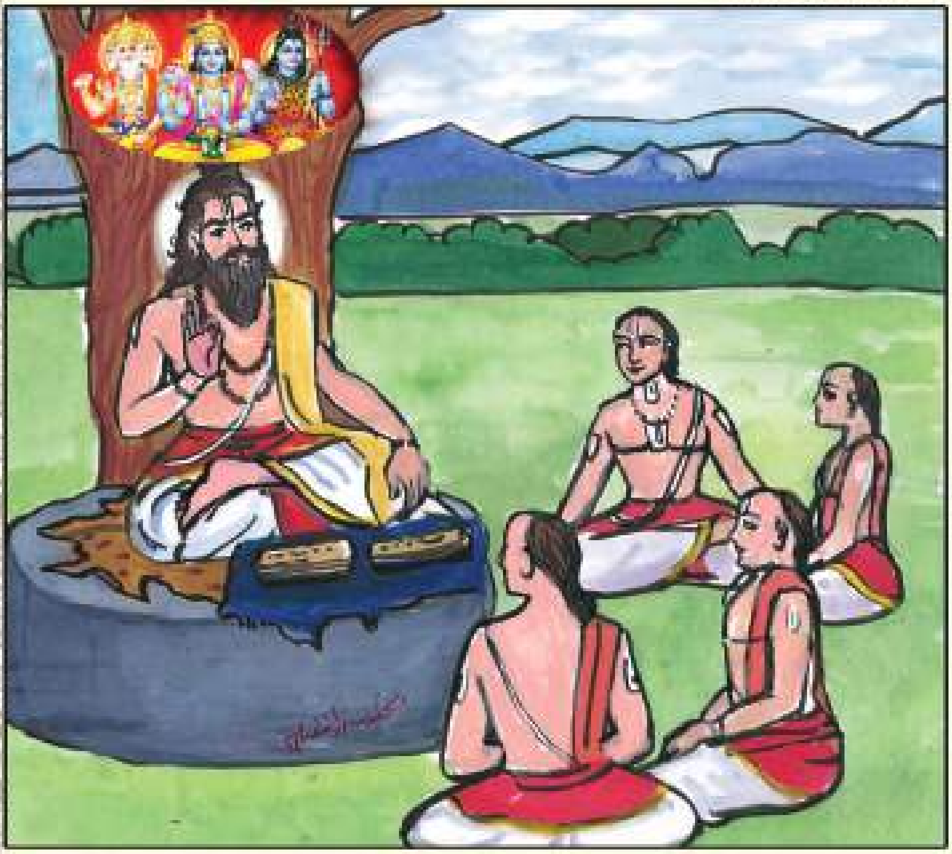

हमारे प्यारे भारत देश में और इस प्राचीन भारतीय संस्कृति में भी गुरु का स्थान बहुत विशिष्ट है। वेदों ने 'मात्रु देवो भव, पित्रु देवो भव, आचार्य देवो भव, अतिथि देवो भव' मानते है और इस श्लोक में भारतीय लोग माता को प्रथम गुरु स्थान में, पिता को द्वितीय गुरु स्थान में और आचार्य को त्रुतीय गुरु स्थान में और आखिर अतिथि को चौथवी गुरु स्थान में रखा है।

नव जात शिशु को उस की माँ ही प्रथम गुरु है। और बचपन में हर एक शिशु को उस का सिर्फ पालन-पोषण के अलावा इस पृथ्वी पर एक क्रम शिक्षण के साथ जीने की तरीका उस की माँ सिखाती है।

और पिताजी भी हर एक शिशु को मानसिक, भौतिक और नैतिक बल देता है। और तीसरा गुरु है। गुरु शिष्य को उसके जीवन में धैर्य और मनो स्थैर्य के साथ जीने की तरीका विद्याभ्यास के साथ सिखाता है।

गुरु पूर्णिमा (१६.०७.२०१९) के अवसर पर ...

हर एक मानव के जीवन पर उस के गुरु का प्रभाव अवश्य पडता है। जीवन में गुरु का स्थान जैसे विशिष्ट है उस का वर्णन कोई भी नही कर सकता।

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः
गुरुर्देवो महेश्वरः।।
गुरु स्साक्षात् परब्रह्म
तस्मै श्रीगुरवे नमः।।

प्राचीन काल के पुराण और वैदिक ग्रंथों में भी गुरु का स्थान विशिष्ट है।

गुरु केवल गुरु ही नही भगवान है। वे ही ब्रह्म, विष्णु और महेश्वर ही नही वे साक्षात परब्रह्म है। गुरु ही हर एक मानव को अपने जीवन में गुरु का असर जरुर पडता है। हमारे भारतीयों का प्रभु और त्रेतायुग पुरुष श्रीराम पर उसका गुरु वशिष्ट और ब्रह्मर्षि विश्वामित्र का असर पडा।

गुरु विश्वामित्र से श्रीराम ने 'बल' और 'अतिबल' विद्या को सिखाया। विद्या को सीखने वालों को अपने गुरु का अनुग्रह पाना अत्यंत प्रधान है। गुरु की आशीर्वाद से ही वह किसी कार्य को भी कर सकता है। जीवन में हर एक भारतीय को अपने गुरु की पूजा करना अवश्य है। गुरु विश्वामित्र स्वयं गुरु होने पर भी

श्रीराम को ''कौसल्या सुप्रजा रामा पूर्वा संध्या प्रवर्तते, उत्तिष्ठ नर शार्दूला कर्तव्यम दैव माह्निकम'' इस श्लोक को गाते हुए श्रीराम के सुप्रभात समय में जगाता है।

द्वापर युग में भगवान श्रीकृष्ण ने सांदीपनी के यहाँ विद्याभ्यास किया। उस काल में विद्याभ्यास को पूरी करके जानेवाले शिष्यों को अपने गुरु को गुरु दक्षिणा देना अनिवार्य था। इस का ज्वलंत उदाहरण है। भारत के काल में अर्जुन ने अपना गुरु द्रोणाचार्य को अपने विद्याभ्यास को पूरी करने के बाद गुरु दक्षिणा के रूप में पांचाल देश के राज द्रुपद को बंद करके अपने गुरु के सामने खडा दिया। इस तरह मानचाहे कार्य को करने से भी गुरु के अनुग्रह को पाना हर एक शिष्य का प्रथम कर्तव्य था। केवल गुरु के आशीर्वाद से ही अर्जुन ने भगवान श्रीकृष्ण की सहायता से लडके कौखो को हराया। इसलिए हमे यह बात मालुम होती है कि मानव के जीवन पर अपने गुरु का असर अधिक पडता है।

वेदव्यास को हिन्दू लोग अपना गुरु मानते है। उन्होने चतुर्वेदों की टीका-टिप्पणि लिखे। साक्षात् भारतीय पंचम वेद 'श्री महाभारत' ग्रन्थ का रचयिता है श्री व्यासमहर्षि। इसलिए भारतीय उस के जन्म दिन के अवसर पर व्यास पूर्णिमा मनाते है।

किरात एकलव्य ने भी महाभारत में द्रोणाचार्य को अपने परोक्ष गुरु मानकर उसके विग्रह को तैयार करके उसको अपना गुरु मानकर उस ने धनुर्विद्या को सीखा। और गुरु द्रोणाचार्य को अपना गुरु मानकर उन को गुरु दक्षिणा के रूप में अपने अंगूठी को एकलव्य ने काट कर दे दी। यही सच्ची गुरु भक्ति है।

हमारे नव भारत में हमारे देश के द्वितीय राष्ट्रपति श्री सर्वेपल्लि राधाकृष्णन के जन्म दिवस को हर वर्ष हम ''गुरु पूजोत्सव' मनाते है। क्योंकि उन्होने एक उपाध्याय के काम करके राष्ट्रपति के पद पर नियुक्त हुये।

संत कबीर दास ने अपने दोहे में गुरु का वर्णन ऐसे किया जैसे मेरे सामने भगवान एवं गुरु खडे होने पर, मैं गुरु को ही प्रथम प्रणाम करता हूँ और इसके बाद ही मैं भगवान को प्रणाम करता हूँ। इस तरह वेद काल से ही गुरु पूजनीय है। अपने अपने गुरु को सम्मान करना शिष्यों का प्रथम कर्तव्य है। तभी वो सच्चा छात्र बनेगा।

आषाढ मास के पूर्णिमा के दिवस पर हम व्यास पूर्णिमा और गुरु पूर्णिमा मनाते है।

तिरुमल यात्री इनको अवश्य ध्यान रखें

- ☑ तिरुमल-यात्रा के लिए निकलने के पूर्व अपने इष्ट अथवा कुलदेवता की प्रार्थना करें।
- ☑ भगवान श्री वेंकटेश्वर स्वामी के दर्शन करने के पूर्व श्री स्वामि पुष्करिणी में स्नान करें, श्री वराहस्वामीजी की पूजा करें।
- ☑ मंदिर के अंदर भगवान पर ही ध्यान केंद्रित करें।
- ☑ मंदिर के अंदर पूर्णतः मौन रहें तथा ''श्री वेंकटेशाय नमः'' का उच्चारण करें।
- ☑ तिरुमल के पास स्थित पापविनाशनम् तथा आकाशगंगा पवित्र तीर्थों में स्नान करें।
- ☑ तिरुमल में रहते समय हमारे रीति-रिवाजों, आचार-व्यवहारों का पालन करें।
- ☑ अपनी भेंट हुंडी में ही डालें।
- ☑ तिरुमल मंदिर के परिसरों को स्वच्छ रखें और पर्यावरण प्रदूषण नियंत्रिक थैलियों को मात्र ही उपयोग करें।
- ☑ श्री बालाजी के दर्शन करते समय संप्रदाय वस्त्र धारण करना है।

तिरुमल श्री बालाजी का आणिवर - आस्थान महोत्सव

तेलुगु मूल - श्रीमती एम.विजयलक्ष्मी

हिन्दी अनुवाद - श्री पी.वी.लक्ष्मीनारायण

तमिल आड़िमाह यानी कर्काटक मास है। कर्काटक से धनुष-राशि के अंत तक चलने वाले सूर्य-संचार के छः मासों का समय ''दक्षिणायन'' कहलाता है, मतलब - कर्काटक में संक्रमण का समय - दक्षिणायन पुण्यकाल!!

तिरुमल श्रीनिवास की उस दक्षिणायन प्रारंभ पुण्यकाल में विशेष पूजा करने के पुण्य संकल्प से उत्पन्न उत्सव विशेष ही आणिवर-आस्थान है, जिसका असली नाम है ''आडिपूजा।'' यही आणिवल में बदल चुका। तमिल-संस्कृति के प्रभाव से 'ड़' 'ण' में बदल कर आणिवार होकर प्रसिद्धि पायी थी। इतना कहना हो रहा है। इस विशेष पूजा के उपलक्ष में स्वामीजी को लभती सांवत्सरिक आय-उसी प्रकार आर्थिक संवत्सर का आरंभ, अधिकारियों का बदलाव, शासन सक्रम ढंग से चलाने के लिए स्वामीजी के यहाँ अपनी विनति समर्पित कर - पुराने-जमाने में अधिकार पाया हुआ होना - इस संदर्भ में याद करना चाहिए।

पुण्यकाल में पुण्यकार्यों का किया जाना एक विशेष संस्कृति है। आणिवर आस्थान के समय में स्वामी की सेवा करना, पूजना, कीर्तित करना, ध्यान करना, स्वामी को साक्षी बना कर, उनके सान्निध्य में पुण्य कार्यों का आचरण करना-जन्म की साफल्यता, भगवान के अनुग्रह की प्राप्ति का सोपान समझा जाता है!

उस श्रीनिवासप्रभु के सरीखा देव न भूतो न भविष्यति है, जो निरंतर और निरंतराय से - रात्रि पर ब्रह्मादि देवताओं के साथ और दिन पर मानवमात्रों से सेवित होते हुए, अपने कटाक्ष से सबको संपूर्ण ढंग से अनुगृहीत करता है! उस श्रीनिवास का वही समान है। ऐसे सर्व जगत के प्रभु तिरुमल श्री वेंकटेश्वरस्वामीजी के संपन्न होने वाले वार्षिक उत्सवों में अत्यंत प्राधान्यता क्रम में प्रथम-गण्य उत्सव विशेष है - तिरुमल आणिवर-उत्सव!!

इस आणिवर आस्थान के संपन्न होते समय हर रोज सुबह सुप्रभात, विश्वरूप-दर्शन, तोमाल-सेवाओं के अनंतर स्नपन-मंडप में श्री वेंकटेश्वरस्वामी (दरबारी प्रतिमा) छत्रचामर आदि विशेष मर्यादाओं के साथ, सोने के सिंघासन पर विराजने पर, देवस्थान के कर्मचारी-भृत्यबृंद, स्वामीजी को पंचांग का श्रवण कराता है। उस दिन की तिथि, वार, नक्षत्र विशेषों के साथ-साथ उत्सव विशेषों का भी श्रीस्वामीजी को निवेदित करते हैं। इतना ही नहीं पूर्व दिन की आय, सोने, चाँदी, आभूषण, पात्र आदियों की, समस्त वस्तुओं की कीमत का हिसाब बना कर, समस्त निकर आय का पैसों तक स्वामीजी को अत्यंतभक्ति तथा श्रद्धाओं के साथ निवेदित करते हैं। पढ़ कर सुनाते हैं। पिछले दिन पर श्रीस्वामी के दर्शन किये भक्तों की वास्तविक संख्या को भी

श्रीवारि आणिवर - आस्थान (१७.०७.२०१९) के अवसर पर...

विज्ञापित करते हैं। इन विन्नपों का दरबार में आसीन भगवान बालाजी महा दर्प के साथ श्रवण कर, आनंदित होते हुए, भक्तों का अनुग्रह करते रहते हैं। यह श्रीवारि का आस्थान है, जो हर दिन संपन्न होगा!

मगर फिर हर रोज के आस्थान के अलावा दक्षिणायन पुण्यकाल में जुलाई १७ पर संपन्न होने वाला आणिवर आस्थान काफी विशेषमंद है और विशिष्ट भी है। तिरुमल आलय के इतिहास में ही अत्यंत प्राधान्यता पाया हुआ है।

हर रोज की तरह दक्षिणायन के संक्रमण के दिन (जुलाई-१७ पर) सुबह बालाजी का सुप्रभात-सेवा, विश्वरूप का दर्शन, तोमाल-सेवा यथाप्रकार संपन्न होते हैं। उसी प्रकार, रोज संपन्न होने का दरबारी श्रीनिवासमूर्ति का नीराजन सोने के सिंघासन पर न संपन्न होयेगा। तोमाल-सेवा के समाप्त होते ही, श्रीदेवी-भूदेवियों से जते हुए श्री मलयप्पा (उत्सवमूर्तियों) का, श्री विष्वक्सेनजी (श्रीस्वामीजी का सेनापति) का ही मंदिर में ही एकांत में तिरुमंजन (अभिषेक) कर दिया जाता है। फिर पहली सहस्रनामार्चना, नैवेद्य (पहला घंटा) दिया जायेगा।

तदनंतर सुनहरे दरवाजे के सामने स्थित तिरुमहामणि-मंडप (घंटा-मंडप) में सर्वभूपालवाहन पर उभय देवेरियों से जते हुए भगवान बालाजी को स्वर्णदेहली के आगे गरुत्मान् के अभिमुख दरबार के लिए सिद्ध कराते हैं। समस्त आभरणों के साथ, सुगंध परिमलभर पुष्पमालिकाओं के साथ भी उत्सवमूर्तियों का खूब अलंकृत बनाते हैं।

श्री वेंकटेश भगवान के बाजू में एक-एक पीठ पर दक्षिणाभिमुख कराये श्री विष्वक्सेनजी को भी आसीन कराये-आभरणों, पुष्पमालाओं के साथ अलंकृत करते हैं। शिरस्त्राण, खड्ग धारे अत्यंत भय-भक्तियों के साथ श्री वेंकटेश्वरस्वामीजी की आज्ञाओं तथा आदेशों का पालन करने सर्वथा संसिद्ध होकर, सर्व सन्नद्ध बन कर होगा यह सेनापति।

तत्पश्चात् आनंदनिलय के मूल-विराट् तथा स्वर्ण देहली के आस्थान में विराजे हुए श्रीवारि उत्सवमूर्तियों, सेनाधिपति को विशेष प्रसादों का निवेदन कुछ इस प्रकार किया जाता है।

श्रीमान बड़े-जिय्यंगार, छोटे-जिय्यंगार, एकांगी लोग, अर्चक, आचार्यपुरुष, वेद-पंडित, देवस्थान के कार्यनिर्वाहक, अन्य अधिकारीगण, देवालय सहाय कार्यनिर्वहणाधिकारी लोग, पारुपत्यदार इत्यादियों के साथ छत्रचामर, मंगलवाद्य सहित वेदपंडित वेद का पारायण करते थे, गमेकार (पाकशाला से प्रसाद को पका कर, लाकर, समर्पित करनेवाले कर्मचारी) पोंगल, शर्करा-पोंगल, पुलिहोरा, दध्योदन, मलहोरा, लड्डू, वडा, अप्पम्, दोसै आदि को निवेदन केलिए लाते है। विमान-गोपुर के प्रदक्षिण में सोने की बावी के बाजू में स्थित पाकशाला से निकल कर इन प्रसादों को, आनंदनिलय का प्रदक्षिण करते हुए, चाँदी के दरवाजे के आगे हुए ध्वजस्तंभ के प्रदक्षिण में जाकर, अंदर प्रवेश कर पुनः आलय का प्रवेश करते हुए, उधर मूल-सन्निधि में, इधर सोने के कपाट के समीप आस्थान में निवेदन के लिए रखते हैं। दोनों प्रदेशों से घंटियों के बजाते हुए यह विशेष नैवेद्य चलेगा।

इस नैवेद्य के संपन्न होने के पश्चात योगनरसिंहस्वामी के मंदिर के बाजू में स्थित परिमल की तह से श्रीमान बड़े जिय्यंगारजी बड़ी चाँदी की थालियों में लपेटे रखे छः बड़े रेशमी वस्त्रों को सिर पर ढ़ोते हुए छत्र और चामर तथा मंगलवाद्य-समेत, आगे पंचमुख मशालों की कांतियों में-हलका ढोल, पटाक, घंटियों के बाजन के साथ, वेद-पारायण के साथ - श्रीमान छोटे जिय्यंगारजी, एकांगी लोग, देवस्थान के कार्यनिर्वहणाधिकारी, सहाय-कार्यनिर्वहणाधिकारी, पारुपत्यदार आदि आलयाधिकारी साथ आते हुए आलय के चाँदी के दरवाजे के सामने के ध्वजस्तंभ के प्रदक्षिण में आकर, फिर आनंदनिलय में श्री स्वामीजी की मूलमूर्ति के आगे समर्पित करते हैं। बडे जिय्यंगार, छोटे जिय्यंगार, एकांगी लोग-मात्र आनंदनिलय का प्रवेश इस बार करते हैं। अर्चक लोग झट कुलशेखर-

पडि (श्रीस्वामीजी के आगे की ड्योढ़ी) पर परदा ढाँकते हैं। अंदर अर्चकस्वामी श्रीजिय्यंगार के समर्पित छः रेशमी वस्त्रों में चारों को श्रीवारि की मूलमूर्ति पर अलंकृत करते हैं। एक किरीट को, दूसरा नंदक खड्ग को, तीसरी धोती के तौर पर, चौथा रेशमी कपड़े को अंगवस्त्र के रूप में सजाते हैं। परदे के हटाने के बाद अर्चकस्वामी श्रीवेंकटेश्वरस्वामीजी की मूलमूर्ति के सिर पर ''परिवट्टम्'' (रेशमीवस्त्र) बाँध कर पूजा-आरती उतारेंगे। आरती के अनंतर प्रधान अर्चक आप पहले तीर्थ को स्वीकार कर, शठारी-मर्यादा को स्वीकारते हैं।।

इस निवेदन के पश्चात् श्रीजिय्यंगार लोग, कुलशेखरपडि के इस ओर आकर तीर्थ स्वीकार कर, पुनः ड्योढी लाँघ कर, शठारी-मर्यादाओं को स्वीकारते हैं। इसी प्रकार छोटे जिय्यंगार लोग, एकांगी भी (आनंदनिलय के अन्दर के अर्चकों के अलावा अन्य लोग तीर्थ स्वीकारते नहीं)। तदनंतर आरती-तीर्थ, शठारी-मर्यादा देवस्थान के कार्यनिर्वाहकों को, आलय अधिकारियों को, मिरासी दारों को चलेंगी। सबको तीर्थ, चंदन, शठारी, तांबूल-मर्यादाओं के संपन्न होने के उपरांत श्री जिय्यंगार बाकी के दो रेशमी वस्त्रों को सिर पर रखे सोने के कपाट पर विराजमान आस्थान में - उत्सवमूर्तियों को समर्पित करते हैं। अर्चक लोग उन दोनों रेशमी वस्त्रों में से एक को श्री मलयप्पस्वामीजी को तथा दूसरे को विष्वक्सेनजी को अलंकृत करते हैं।

इसके बाद प्रधान अर्चक लोग अपने सिर को श्रीवारि पादवस्त्र से परिवट्टम् (सिर पर बाँधने वाला छोटासा रेशमी कपडा) बाँध कर श्रीस्वामीजी पर, विष्वक्सेनों पर कुंकुम के अक्षत छिट कावेंगे! उसके बाद सेनाधिपतिजी को परिवट्टम् बाँध कर श्रीस्वामीजी पर छिड़कायी अक्षताओं को विष्वक्सेनजी पर छिड़का कर, शठारी की मर्यादाएँ चलाते हैं।

फिर अर्चकलोग श्रीस्वामीजी के द्वारा तंडुल-दान, दक्षिणा को स्वीकार कर, ''नित्यैश्वर्यो भव'' कह कर श्रीस्वामीजी को आशीर्वचन देते हैं। तदुपरि अचर्क लोग शठारी-मर्यादाएँ पाकर, अनंतर स्वामीजी का दरबार और मंगल आरती उतारते हैं। इस निवेदन में भगवान को तिलहनों का पिष्ट समर्पित करते हैं।

इसके उपरांत अर्चकमहोदय बडे-जिय्यंगार को परिवट्टम् बाँध कर श्रीस्वामीजी के चरणों तले रखे हुए श्रीजिय्यंगारों की अपनी मोहर (सील) को उनके हाथ में देकर देवस्थान वालों के ''लच्चना'' नामक चाबियों के गुच्छे को उनके दायें हाथ में लगाकर, श्रीस्वामीजी की आरती उतार कर - तीर्थ, चंदन, शठारी मर्यादाओं को मनाते हैं। फिर, चाबियों का गुच्छ श्रीस्वामीजी के चरणों के तले रखा जायेगा। उसी ढंग से श्री छोटे-जिय्यंगारजी को, अपनी मोहर (सील) हाथ में थमा कर, चाबियों के गुच्छे की (लच्चन) हाथ में लगा कर - आरती, तीर्थ, शठारी,

चंदन, तांबुल आदि सत्कारों का मनाना होयेगा। उसके पश्चात् एकांगी को भी इन्हीं सत्कारों से सत्करित किया जायेगा!!

उसके अनंतर तिरुमल तिरुपति देवस्थान की तरफ के उन्नताधिकारी सिर्फ मुख्य कार्यनिर्वहणाधिकारी को ही परिवट्टम् बाँधकर, देवस्थान की मोहर (सील), चाबियों का गुच्छा हाथ में लगाकर, आरती चंदन-तांबूल-तीर्थ-शठारी आदि सत्कार किये जाने का संप्रदाय है।

फिर, एकांगी सिर पर परिवट्टम् बाँध कर आस्थान में हाजिर भक्तों से श्रीस्वामी वेंकटेश भगवान के उपहार वसूल कर, कार्यवाही अधिकारियों को समर्पित करते हैं। वह उन उपहारों को एक थैली में रख कर, मोहर (सील) लगा कर चाँदी की थाली में रख कर सिर पर ढोते हुए ले जाकर मंदिर में स्थित श्रीवारि की हुंडी में समर्पित करते हैं।

एकांगी महोदय को शठारी आदि मर्यादाओं के संपन्न होने के पश्चात्, श्री कार्यनिर्वहणाधिकारियों को आरती, तांबूल, तीर्थ, शठारी मर्यादाएँ चलती हैं। उसके उपरांत देवस्थान के धर्मकर्त्ताओं की मंडली के अध्यक्ष, सदस्य, संयुक्त कार्यनिर्वाहक, तिरुमल आलय के कार्यवाही अधिकारी, सहाय-कार्यनिर्वाहक, पारुपत्यदार आदि महानुभावों को आरती, शठारी, तांबूलादि सत्कार किया जायेगा।

अनंतर गमेकार, महंत, मैसूर का महराजा, ताल्लपाका, तरिगोंडा वालों को आरतियाँ उतारी जायेंगी। मर्यादाएँ चलायी जायेंगी। इसके बाद वहाँ मौजूद भक्त लोगों से एक-एक रुपया वसूल कर, सबके लिए ''रुपये की आरती'' उतारी जावेगी। इस आरती के दौरान वसूल किये हुए रुपयों को कुल मिला कर, तुरंत, कार्यनिर्वाही अधिकारियों के समक्ष में खजाने में जमा किया जाता हैं।

आखिर में पुनः श्रीजिय्यंगारजी, श्रीकार्यनिर्वहणाधिकारी मात्रों को परिवट्टम् बाँध कर, शठारी की मार्यदाएँ की जाती हैं। अनंतर श्रीस्वामी को निवेदित प्रसाद-वगैरह उन-उनके ओहदों के अनुसार कतार-से प्रसाद का वितरण किया जाता है। उसके बाद भक्तों में भी प्रसाद बाँटा जायेगा। यह इस संदर्भ में गणनीय विषय है कि आणिवर आस्थान के दिन आर्जित उत्सव न चलेंगे।

फिर, श्रीस्वामीजी अपनी देवेरियों के साथ उसी मंडप में (दूसरा घंटा) दोपहर के नैवेद्य के समाप्त होने तक ठहरते हैं। फिर, उस सायंत्रम् तिरुमलपुर की वीथियों में से रमणीय ढंग से अलंकृत ''फूलों की पालकी'' में अत्यंत वैभवपूर्ण ढंग से शोभा-यात्रा करते हुए चलते हैं। उत्सव के अनंतर श्रीस्वामीजी अपनी देवेरियों के समेत आलय में पुनःप्रवेश कर जाते हैं।

जो कोई तिरुमल श्री वेंकटेश्वर स्वामीजी को पुण्यकाल में विशेष पूजा-पाठ मना कर धन्य बनते हों, उन्हें कीर्ति, विजय, इष्ट काम्यार्थ की सिद्धि और उन्हें विष्णु-लोक की संप्राप्ति होयेगी-ऐसा आगमशास्त्र बताता है। अतः ऐसे महत्तर पुण्यवर्द्धित कार्यक्रमों में भाग लेकर, ''रुपये की आरती'' में उपहार समर्पित कर, भगवान बालाजी के अशिस पालें।

श्री वेंकटेश्वर परब्रह्मणे नमः

हिन्दू होने के नाते गर्व कीजिए!

* ललाट पर अपने इच्छानुसार (चंदन, भस्म, नामम्, कुंकुम) तिलक का धारण करें।
* नहाने के बाद निम्न भगवन्नामों से किसी न किसी का एक पर्याय में १०८ बार जप करें।

श्री वेंकटेशाय नमः।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो नारायणाय।

(गतांक से)

सियाराम ही उपाय

शरणागति मीमांसा

(पंचम खण्ड)

सियाराम ही उपेय

मूल लेखक
श्री सीतारामाचार्य स्वामीजी, अयोध्या

प्रेषक
दास कमलकिशोर हि तापडिया

८७

श्रीमते रामानुजाय नमः

तेषां ज्ञानी नित्य युक्तः एक भक्ति र्विशिष्यते।
प्रियोहि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः।।

इसका अर्थ हे अर्जुन! उन चार प्रकार के भजन करने वाले अधिकारियों में तीन तो सकाम हैं परन्तु चौथा जो अधिकारी है उसका नाम ज्ञानी है। उसमें भरपूर स्वरूप ज्ञान है। वह संसार के जुटान को प्रारब्धाधीन जाना है, इन चौदह लोकों को नाशवान समझता है। सच्चा प्रिय बन्धु मुझको ही जानता है। मनुष्य देह पाने का फल परमात्मा की नित्य सेवा की प्राप्ति है। इस बात को वह खूब समझा है। नाशवान पदार्थ के लिये प्यारे परमात्मा से स्वप्न में भी याचना नहीं करूँगा। इस बात को मन से दृढ़ संकल्प किया हुआ है। हमारी सेवा के अतिरिक्त उसके मन में दूसरी चीज की कभी चाहना ही नहीं होती है। इसी से सदा ही वह हमारा नित्य योग चाहता है। याने हमको देखे बिना हम से मिले बिना उसको चैन नहीं रहती है। एक हमारे में ही उसकी ललक रहती है। सदा हमारी ही सेवा चाहता है। इसलिये यह जो चौथा अधिकारी ज्ञानी है यही सबों का शिर-मौर है क्योंकि उसमें सांसारिक कामनायें छू नहीं गईं हैं। याने मुझ से और कुछ नहीं माँगकर मुझको ही माँगता है। उसको मैं अत्यन्त प्रिय हूँ याने हमारे ऊपर जितना बढ़-चढ़ के उसका प्रेम है उसे मैं भी नहीं बता सकता और मेरा भी वही अत्यन्त प्रिय है। यह जो ज्ञानी है याने मुझ से ऐश्वर्य कैवल्यादिक को भूलकर स्वप्न में भी नहीं चाहना करके मुझ से मुझ को ही चाहता है इससे वह हमारी आत्मा है। याने प्राण के समान है। क्योंकि वह एक मुझ को ही चाहने वाला है। क्योंकि मनुष्य देह पाने का सारे सत्संगों का सब इतिहास पुराण आदि श्रवण का सब से ऊँचा निचोड़ फलों का फल हम को ही, हमारी नित्य सेवा को ही मानकर उसी पर परिस्थिति कर लिया है। हे अर्जुन! जब अनेक जन्मों की परिसमाप्ति हो जाती है। याने फिर इस जन्म मरणादि चक्र में नहीं आना रहता है वही बड़ भागी इस प्रकार के ज्ञान वाला होता है उपायान्तर छोड़ एक मेरी ही शरणागति करता है यानी संसार चक्र से छूट कर सदा के लिये परमपद में जाकर हमारी नित्य सेवा जो उसका परम फल है उसकी प्राप्ति के लिये स्वरूपानुरूप उपाय जो मैं हूँ। मेरी निर्हेतुक कृपा ही पर दृढ़ाध्यवसाय करके सदा के लिये रहता है। वही खरा महात्मा है। हे अर्जुन! इस सकाम जगत में मुझ से कभी कुछ अन्य चाहना न करके मुझ से मुझ को ही चाहने वाला अधिकारी महादुर्लभ है। महात्माओं! चार अधिकारियों का प्रसंग चला कर भगवान सकामी का फिर नाम तक नहीं लिये और भगवान से भगवान के अतिरिक्त और कुछ नहीं चाहने वाले का ज्ञानी की उपमा दिये, अपनी आत्मा बताये, महात्मा कहे उसी का अन्तिम जन्म बताये। अतः मुमुक्षुओं! जिसको भगवान का आत्मा बनना हो, इसी जन्म के अन्त में परमधाम लेना हो उस मुमुक्षु को चाहिये कि परमात्मा से परमात्मा की नित्य सेवा छोड़ कर स्वप्न में भी कभी कुछ याचना न करे। यद्यपि सकाम भाव का प्रसंग शास्त्रों में है, परन्तु वह सामान्य से सामान्य अधिकारियों के लिये है, खरे

मुमुक्षुओं के लिए नहीं है। यदि खरे मुमुक्षुओं के लिए होता तो ज्ञानियों में शिरोमणि श्री यामुनाचार्यजी महाराज सकाम भाव वाली बुद्धी के समीप से श्रीरंगनाथ भगवान की सन्निधि छोड़कर श्री मन्दिर से बाहर "न चले जाते। फिर जब श्री नृसिंह भगवान श्री प्रह्लादजी से कहे कि पुत्र? कुछ हम से मांगो। ऐसी बात सुन कर परम ज्ञानी श्री प्रह्लादजी ने प्रार्थना की कि हे कृपा नाथ! जो श्री चरणों की निर्हेतुक कृपा से प्रयोजनान्तर रहित सद्‌गुरु के कृपा पात्र स्वरूप ज्ञानी श्री चरणों के आश्रित जन हैं वे लोग प्रभु की नित्य सेवा के अतिरिक्त स्वप्न में भी कभी कुछ मांग सकते हैं? कदापि नहीं यह दास तो श्री चरणों का निष्काम सेवक है। प्रभु तो सदा से कारण रहित कृपालु हुई हैं। हे अनादि के सच्चे पिता! प्रभु के श्री चरण कमलों को नित्य सेवा को छोड़ कर जो और कुछ प्रभु की सन्निधि में याचना प्रार्थना करता है, समझदार मुमुक्षुओं की गोष्ठी में वह उच्चकोटि का भगवद्भक्त नहीं गिना जाता है। क्योंकि उसमें स्वरूप ज्ञान नहीं है। इससे अपने नित्य बन्धु जो परमात्मा हैं उन्हें छोड़ कर नाशवान क्षणिक चीजों की याचना करता है। जब कि इस दास के ऊपर इतनी देव दुर्लभ अपार कृपा की वर्षा की जा रही है फिर इससे बढ़कर और कौनसा बर हो सकता है। दास तो श्री चरणों में बारम्बार यही प्रार्थना करता है कि हमारे हृदय में आपके श्री चरणों की नित्य सेवा के अतिरिक्त स्वप्न में भी कभी दूसरी कामना उत्पन्न ही न हो। इस अनुचर के लिए यही अनुग्रह सदा बनी रहे।

अहंत्वकामस्त्वद्भक्तः स्वं स्वामी ह्यन पाश्रयः।
कामनां हृद्य संरोहो भवतस्तु वृणे बरम् ।।

इसका भाव पहले ही कह चुके हैं। फिर प्रह्लादजी प्रार्थना करते हैं कि हे मेरे परम-पिता! सामान्य राजा प्रजा के समान ही हमारे और आप में अनित्य सम्बन्ध नहीं है किन्तु आप से और हम से अनादि से अकाट्य पिता पुत्र का सम्बन्ध है। न जाने किस प्रकार की कौनसी हमारे दुर्भाग्य की घटना हो पड़ी है कि प्रभु की नित्य सेवा को छोड़कर इस संसार चक्र में पड़े हुए हैं और नित्य सेवा से तथा सरकार के सदा साक्षात् दर्शन स्पर्शन से बञ्चित हो रहे हैं। हे करुणा सागर! जो बीत गया सो बीत गया अब तो यही अनुग्रह हो कि यह दास सदा सरकार की निष्काम सेवा याने स्वार्थ रहित परार्थ कैंकर्य का भागी बने। सरकार! यह कितनी दुर्भाग्य की बात है कि जो गर्भ का मित्र और सब के छोड़ देने की हालत में सम्हालने वाले हैं उनके तो साक्षात् दर्शन, स्पर्शन, संलाप नित्य सेवा से बञ्चित रहे, और जो बीच ही में मिलते हैं और बीच ही में परवश छूट जानेवाले और अनित्य नाशवन्त हैं और बन्धु कहाने मात्र के हैं परन्तु वास्तव में सच्चा बन्धु कोई नहीं है इन लोगों में हीं सारा समय सारी जिन्दगी बीत जाय। हे हमारे परमपिता! अब तो निर्हेतुक अपने असीम अनुग्रह से यह सेवक नित्य सेवा का भागी बनाया जावे। हे महात्माओ! यह कैसा दिव्य ज्ञान है। बस! खरे मुमुक्षुओं का यही बर्ताव है। वह खुद तो प्रभु की नित्य सेवा के सिवा अपने प्यारे परमात्मा से कुछ भी याचना काहे को करेगा। परन्तु अपनी नित्य सेवा के अतिरिक्त खुद भगवान भी कुछ देना चाहें तो भी उनसे उनके श्री चरण कैंकर्य के सिवा कुछ भी ऐहिक पदार्थ नहीं लेता है बस इस प्रकार जो निष्काम बड़भागी सच्चे मुमुक्षु लोग हैं उन्ही को श्री गीताजी में भगवान ने अपना प्राण बताया है। इससे हमलोगों को भी चाहिए कि महा संकट आने पर भी इस ज्ञान को न भूलें न अपने प्यारे परमात्मा से कुछ भी याचना करें। इस प्रकार यदि हमलोग रहेंगे तो देव दुर्लभ मनुष्य जीवन हमलोगों का जरूर सफल होगा। श्री देवराज गुरु के श्रीमुख से यह दिव्य उपदेश श्रवण करके वे मुमुक्षु श्रोता सब गद्‌गद् हो गये। उस दिन प्रवचन समाप्त किया गया। सबों ने गुरुदेव को धन्यवाद पूर्वक साष्टांग प्रणाम करके आज्ञा लेकर उन विषयों को मनन करते हुए अपने-अपने आश्रम पर पधारकर नित्य क्रियाओं से निवृत्त होकर भगवान का आराधन कर प्रसाद लेलेकर श्रीदेवराज गुरु के श्री चरणकमल को हृदय में ध्यानकर उन विषयों का मनन करते विश्राम कर गये।

(क्रमशः)

ध्रुव द्वारा भगवत्प्राप्ति

तेलुगु मूल - डॉ.वैष्णवांघ्रि सेवक दास
हिन्दी अनुवाद - श्री अमोघ गौराँग दास

भक्त ध्रुव द्वारा भगवत्प्राप्ति की सफलता अत्यंत प्रेरणात्मक है। उन्होने केवल छह महीनों में कठोर तपस्या के द्वारा भगवान के दर्शन प्राप्त किये और सुंदर प्रार्थनाओं से भी भगवान को प्रसन्न किया। भगवान को प्रसन्न करने एवं इस जगत में सर्वोच्च स्थान प्राप्त करने में ध्रुव की सफलता सदैव उत्साहित करने वाली है। उनकी यह कथा अत्यंत शुभ एवं फल-सिद्धि प्रदान करने वाली है।

विष्णु भगवान के प्रकट होने पर ध्रुव ने तुरन्त उनकी स्तुति का गायन करते हुए दण्डवत प्रणाम किया। भगवान ध्रुव की सच्ची भक्ति से बहुत प्रसन्न हुए और उन्हे आशीर्वाद देते हुए कहा ''प्रिय ध्रुव मैं तुम्हे एक ऐसा लोक प्रदान करूँगा जो अनश्वर है और प्रलय के समय भी नष्ट नहीं होता है। ऐसा लोक अभी तक किसी अन्य को प्राप्त नहीं हुआ है और अन्य सभी ग्रह इसकी परिक्रमा करते हैं। पहले तुम इस पृथ्वी पर लगातार छत्तीस हजार वर्षों तक राज्य करोगे। इतने वर्षों के बाद भी तुम वृद्ध नहीं होगे। तुम यहाँ सभी भौतिक आनंदों को प्राप्त करके अंत में मेरे पास आओगे। यहाँ के कार्य समाप्त करने के बाद तुम निश्चित रूप से मेरे पास आओगे।'' इस प्रकार परम भगवान ने भविष्यवाणी की और वर्तमान के लिए निर्देश देकर वे अपने नित्यधाम चले गये। तब ध्रुव राज्य में लौट गये और प्रसन्नता पूर्वक पिता के महल में रहने लगे।

जब राजा उत्तानपाद को ज्ञात हुआ कि ध्रुव राजगद्दी पर बैठने के योग्य हो गया है तो उन्होने शीघ्र ही उसके राज्याभिषेक की तैय्यारी की। सभी नगरवासियों ने प्रसन्नता प्रकट करते हुए ध्रुव का अपने राजा और पिता के रूप में स्वागत किया। ध्रुव को संपूर्ण पृथ्वी का राज्य सौंपकर उत्तानपाद परम सत्य की खोज में वन चले गये। बाद में शिशुमार प्रजापति की सुंदर पुत्री भ्रमि से ध्रुव का विवाह हुआ। भ्रमि ने दो पुत्रों को जन्म दिया जिनके नाम कल्प एवं वत्सर थे। ध्रुव महाराज ने वायु देव की पुत्री से भी विवाह किया और उससे भी दो संताने प्राप्त हुईं।

एक बार ध्रुव महाराज का उत्तम नामक सौतेला भाई हिमालय क्षेत्र में चला गया जहाँ एक यक्ष ने उसका वध कर दिया। उत्तम की माँ सुरूचि पुत्र की मृत्यु का समाचार पाकर अत्यंत शोकग्रस्त हो गईं और पुत्र की खोज में वे वन में चली गईं। वहाँ भयंकर दावाग्नि में जलकर उनकी

मृत्यु हो गई। एक यक्ष द्वारा अपने भाई के वध का समाचार पाकर ध्रुव बहुत क्रोधित हो गये। ध्रुव ने तुरन्त अलकापुरी नामक यक्षों के नगर पर आक्रमण कर दिया। जब ध्रुव ने शंख बजाया तो यक्षों की सभी पत्नियाँ अत्यंत भयभीत हो गईं। तब एक भयानक युद्ध प्रारंभ हुआ और ध्रुव महाराज के तीक्ष्ण बाणों से यक्षों के सभी योद्धा धराशायी होने लगे। ध्रुव महाराज की अतुलनीय वीरता से अनेकों यक्ष मारे गये। उसी समय अनेक संतों के साथ स्वायंभुव मनु ने वहाँ आकर ध्रुव को शांत किया। मनु के सुझाव के अनुसार ध्रुव महाराज ने तुरंत युद्ध बंद कर दिया।

युद्ध बंद होने का समाचार पाते ही देवताओं के कोषाध्यक्ष कुबेर वहाँ प्रकट हुए। उन्होने ध्रुव को स्वेच्छा से एक वरदान माँगने के लिए कहा। कुबेर के मित्र-भाव से प्रसन्न होकर ध्रुव ने उनसे अटूट विश्वास एवं दृढ़ स्मृति पाने का वरदान माँगा। यह अज्ञानता के अथाह सागर से बाहर निकलने के लिए अत्यंत आवश्यक है। कुबेर देवताओं के कोषाध्यक्ष हैं। वे कितना भी धन दे सकते थे, लेकिन ध्रुव के लिए भगवान की भक्ति सेवा ही सबसे मूल्यवान थी। ध्रुव महाराज द्वारा माँगे हुए वरदान को पूर्ण रूप में प्रदान करके कुबेर अपने लोक चले गये। कोई प्रश्न पूछ सकता है कि भक्त को एक देवता के वरदान की क्या आवश्यकता है? उसका उत्तर है कि देवताओं के एसे वरदान, जो भगवान कृष्ण की सेवा करने में सहायक हैं, स्वीकार्य होते हैं। गोपियों ने भी कृष्ण को अपने पति के रूप में पाने के लिए देवी, कात्यायनी का पूजन किया था। ध्रुव महाराज ने भगवत्धाम वापस जाने का आशीर्वाद न माँग कर अपने अस्तित्व की हर अवस्था में भगवान का स्मरण रहने का वरदान माँगा। कुबेर ने प्रसन्नता पूर्वक एसा वरदान दिया और ध्रुव महाराज ने उसे स्वीकार किया।

राजधानी में लौटने के बाद ध्रुव महाराज ने भगवान की प्रसन्नता के लिए अनेकों यज्ञ किये। उन्होने पिता की तरह सभी नगरवासियों की रक्षा की और सभी भक्तों के प्रति सम्मान व्यक्त किया। इस प्रकार उन्होने पूरे छत्तीस हजार वर्षो तक राज्य किया। उन्होने सदैव पुण्य कार्यो का अनंद लेना एवं पाप कर्मो के फल को यज्ञ द्वारा नष्ट करना सुनिश्चित किया। बाद में अपने पुत्र को राज्य सौंप कर वे हिमालय पर चले गये। ध्रुव महाराज ने भली प्रकार समझा कि यह जगत भ्रम से पूर्ण है और पारिवारिक संबन्ध दुःखों का श्रोत मात्र हैं। हिमालय पर उन्होने बद्रिकाश्रम के पास निवास किया। गंगा के पवित्र जल में स्नान करने से उनकी सभी इन्द्रियाँ शुद्ध हो गईं। ध्रुव महाराज ने अपना ध्यान पूरी तरह भगवान के दिव्य रूप पर केन्द्रित किया। वे आध्यात्मिक चेतना में पूरी तरह डूब गये और उनकी आँखों से परम सुख के अश्रु बहने लगे। उचित समय पर वहाँ एक दिव्य विमान आया जिस पर अलौकिक सुंदरता वाले दो व्यक्ति विराजमान थे। वे दोनो व्यक्ति चार भुजाओं वाले एवं आध्यात्मिक जगत के अमूल्य आभूषणों से सुसज्जित थे। ध्रुव महाराज समझ गये कि वे भगवान के पार्षद हैं। ध्रुव महाराज ने उनका सम्मान किया।

दिव्य व्यक्तित्व वाले उन दो व्यक्तियों का नाम नन्दा एवं सुनन्दा था। उन व्यक्तियों ने ध्रुव महाराज की सराहना करते हुए उन्हे आध्यात्मिक जगत में चलने की तैय्यारी करने का आदेश दिया। उन्होने ध्रुव महाराज को बताया कि स्वयं परम पुरुषोत्तम भगवान ने वह विमान उनके लिए भेजा है। वह समाचार सुनकर ध्रुव महाराज अत्यंत प्रसन्न हुए और अपने दैनिक कार्य एवं साधना के बाद वे तैय्यार हो गये। जब वे विमान में बैठने वाले थे तो वहाँ साक्षात काल (मृत्यु) का प्राकट्य हुवा और ध्रुव महाराज अपने पैर काल के सिर पर रखकर विमान में चढ़ गये।

जब विमान उड़ान भरने ही वाला था तो अचानक ध्रुव को अपनी माँ सुनिति की याद आयी। वे अपनी माँ को इस पृथ्वी पर अकेला छोड़कर आध्यात्मिक जगत नहीं जाना चाहते थे। शीघ्र ही ध्रुव की भावनाओं को समझते हुए नन्दा एवं सुनन्दा ने उन्हे एक अन्य विमान दिखाया जिसमे विराजमान सुनिति पहले ही आध्यात्मिक जगत की ओर जा रही थीं। उस दृश्य से ध्रुव अत्यंत संतुष्ट हो गये और प्रसन्नता पूर्वक आध्यात्मिक जगत की ओर चल पड़े। आध्यात्मिक जगत के मार्ग में उन्होने कई लोक देखे। देवताओं ने उनके ऊपर पुष्पों की वर्षा की। बाद में सप्तऋषियों समेत सभी ब्रह्माण्डों को पार करके वे भगवान् के नित्य धाम में पँहुचे। अंत में वे अपने लिए विशेष रूप से निर्धारित ध्रुवलोक में पहुँचे।

ध्रुव महाराज की यह महान कथा प्रचेताओं की उपस्थिति में स्वयम् नारद मुनि सुना रहे थे। संत पुरुष, भक्त एवं ऋषिगण सदैव ध्रुव महाराज की यह कथा सुनने के इच्छुक रहते हैं। यह कथा लम्बी आयु, वैभव एवं यश प्रदान करने वाली तथा सभी इच्छाओं को पूर्ण करने वाली है। इससे आध्यात्मिक लोकों की प्राप्ति भी होती है। यह अद्भुत कथा देवताओं को भी आनंद प्रदान करने वाली है। ध्रुव की कथा सभी पापों के फल से मुक्त कर देती है। इसका श्रद्धा पूर्वक श्रवण करने वाला व्यक्ति तीनो विपदाओं से मुक्त होकर स्थाई रूप से आध्यात्मिक मार्ग पर अग्रसर होता है। असाधारण शक्ति, परिणाम एवं तेज की प्राप्ति के इच्छुक व्यक्तियों को ध्रुव महाराज की यह कथा सुननी चाहिऐ। प्रतिष्ठा प्राप्ति की इच्छा रखने वाले व्यक्तियों को भी इस कथा के श्रवण का मार्ग अपनाना चाहिऐ।

ध्रुव महाराज के कार्यों एवं उनकी महिमा का गायन संत पुरुषों की उपस्थिति में करना चाहिए। भगवान के शुद्ध भक्तों को ध्रुव महाराज की कथा का गायन किसी प्रकार के पारिश्रमिक के बिना ही करना चाहिए। पूर्णमासी, अमावस्या, द्वादशी, श्रवण नक्षत्र का समय, रविवार या महीने की अंतिम तिथि ध्रुव महाराज की कथा का श्रवण करने के लिए सर्वोच्च हैं। इस कथा को केवल निष्ठावान व्यक्तियों की उपस्थिति में ही सुनाना चाहिए। व्यवसायिक लाभ या किसी अन्य प्रकार की इच्छा के बिना ध्रुव महाराज की महिमा का गायन करने एवं श्रवण करने वाले व्यक्ति को जीवन में पूर्णता प्राप्त होती है। यह कथा अमर होने का सर्वोच्च मार्ग है। इस कथा से लोग सच्चाई के मार्ग पर चल सकते हैं। वास्तव में एसा करने वाले व्यक्ति को देवताओं का आशीर्वाद प्राप्त होता है। बाल्यकाल की अत्यंत कम आयु में मनोरंजन के खिलौनों एवं माता की गोद को छोड़ कर भगवान विष्णु की शरण प्राप्त करने वाले ध्रुव महाराज की अद्भुत लीलाएँ निश्चित रूप से महान, अविश्वसनीय, पुण्य एवं शुद्ध हैं।

'मानव सेवा ही... माधव सेवा'

आर्ष धर्म में बताया गया है।
सह प्राणियों को किसी भी तरह रक्षा की जाय, तो अनंत पुण्यफल हमें और हमारे परिवार को मिलेगा। कलियुग वैकुण्ठ के भगवान का आवास स्थान तिरुमल में रक्तदान करना परम पवित्र कार्य है।
आपके रक्त से अन्य व्यक्ति का प्राण बचता है।

तिरुमल में रक्तदान कीजिए।

तिरुमल अश्विनी अस्पताल में प्रतिदिन सुबह 8 बजे से लेकर दोपहर 12 बजे के अंदर कोई भी रक्तदान कर सकता है।

दूरभाष - 0877-2263601

आइये... रक्तदान कीजिए!
संकटग्रस्त व्यक्ति को सहायता कीजिए!!

(गतांक से)

श्री रामानुज नूट्रन्दादि

मूल - श्रीरंगामृत कवि विरचित

प्रेषक - श्री श्रीराम मालपाणी

**पडिकोण्ड कीर्ति यिरामायण मेन्नुम् पत्तिवेळ्ळम्,
कुडिकोण्ड कोयि लिरामानुजन् गुणङ्कूरुम्, अन्बर्
कडिकोण्ड मामलर्त्ताळ् कलन्दुळ्ळम् कनियुम् नल्लोर्
अडिकण्डुको ण्डुहन्दु, एन्नैयु माळव क्काक्किनरे ॥३७॥**

विश्वविसृत्वरातिख्यातिशालिश्रीरामायणख्यभक्तिसिन्धुनित्यावसथभूतस्य भगवतो रामानुजस्य गुणगणान्कीर्तयतां सतां पादारविन्देषु समिन्धानभक्तयो महानुभावा वस्तुस्थितिमवगम्य मामपि तस्यैव गुरुवरस्य दासमकार्षुः।

सारे संसार में विस्तृत यशवाले श्री रामायण नामक भक्तिसमुद्र के नित्यनिवासस्थान श्रीरामानुज स्वामीजी के कल्याणगुणों का ही कीर्तन करनेवाले भक्तों के सुगंधि व श्रेष्ठ पादारविंदों में दृढ भक्तिवाले महात्मा लोगों ने वस्तुस्थिति समझ कर (अर्थात् यह समझकर कि यह आत्मवस्तु श्रीरामानुजस्वामीजी का ही शेषभूत है) मुझको भी सादर उनका (श्रीरामानुजस्वामीजी का) भक्त बना दिया। (विवरण - श्रीरामानुज भक्त-भक्तों ने मुझ पर यों दया करते हुए कि ''श्रीरामानुज स्वामीजी का ही शेषभूत यह अमुदनार उस शेषभाव से दूर रह कर वृथा ही नष्ट हो रहा है'', सदुपदेशादि मार्ग से मुझे सुधार कर, उनका पादभक्त बना दिया।)

(क्रमशः)

दि. ०९-०६-२०१९ को तिरुमल श्री बालाजी के दर्शनार्थ भारत देश के प्रधानमंत्री मान्यवर श्री नरेंद्रमोदी जी तथा उनके साथ उभय तेलुगु राज्यों के राज्यपाल माननीय श्री ई.एस.एल.नरसिंहन जी, आंध्रप्रदेश के मुख्यमंत्री माननीय श्री वाई.एस.जगन मोहन रेड्डी जी मंदिर में पधारे।

ति.ति.दे. के जीयर स्वामीजी ने मान्यवर श्री नरेंद्रमोदी जी को आशीर्वचन दिया। तदुपरांत श्रीवारि के तीर्थप्रसाद व चित्रपट को आं.प्र. मुख्यमंत्री जी, ति.ति.दे. कार्यनिर्वहणाधिकारी और तिरुमल संयुक्त कार्यनिर्वहणाधिकारी ने सौंपा।

भारत के प्रधानमंत्री
मान्यवर श्री नरेंद्रमोदी जी के द्वारा
श्रीवारि प्रसाद का सेवन

दि. १७-०५-२०११ से दि. १९-०५-२०११ तक
तिरुचानूर श्री पद्मावती देवी के लिए
आयोजित वार्षिक वसंतोत्सव के दृश्य।

समयानुसार बारिश होने के लिए तथा
देश को सस्यश्यामल बनाने के लिए
ति.ति.दे. ने २०११, मई १४ से १८ तक
तिरुमल के पार्वेट मंटप के पास
शास्त्रोक्त रीति में कारीरिष्ट याग का
आयोजन किया। उसके दृश्य प्रस्तुत हैं।

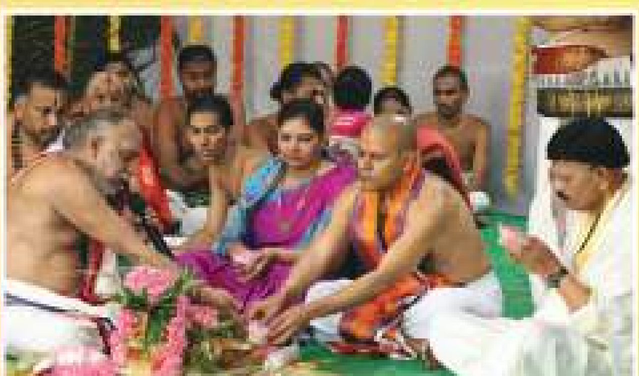

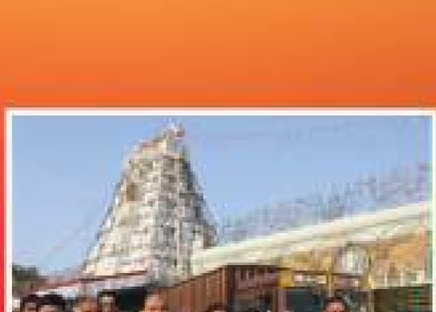

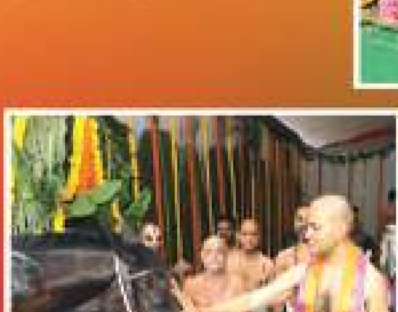

समयानुसार बारिश होने के लिए तथा
देश को सस्यश्यामल बनाने के लिए
तिरुपति श्री कपिलेश्वरस्वामी मंदिर में
ति.ति.दे. ने २०११, मई १५ से १८ तक
शास्त्रानुरूप वरुण जप का आयोजन किया।
उसकी दृश्य मालिका प्रस्तुत है।

दि. ०४-०६-२०१९ को श्री बालाजी के दर्शन के लिए
भारत देश का उपराष्ट्रपति माननीय श्री एम.वेंकय्यनायुडुजी पधारे।

ति.ति.दे. कार्यनिर्वहणाधिकारी श्री अनिलकुमार सिंघाल, आई.ए.एस., और
तिरुमल संयुक्त कार्यनिर्वहणाधिकारी श्री के.एस.श्रीनिवासराजु, आई.ए.एस.,
ने उपराष्ट्रपति जी को श्रीवारि तीर्थप्रसाद व चित्रपट भेंट दिए।

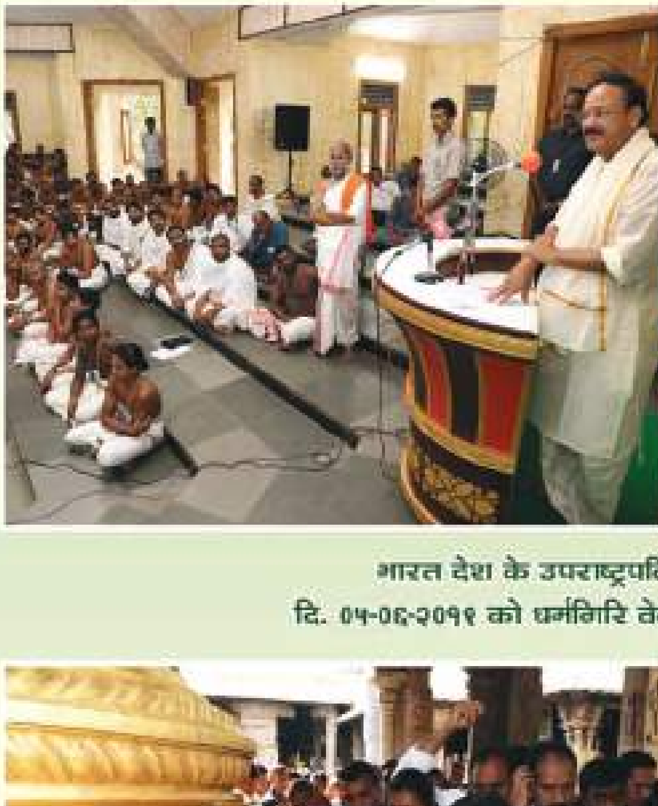

भारत देश के उपराष्ट्रपति माननीय श्री एम.वेंकय्यनायुडु जी ने
दि. ०५-०६-२०१९ को धर्मगिरि वेदविज्ञान पीठम् (तिरुमल) का संदर्शन किया।

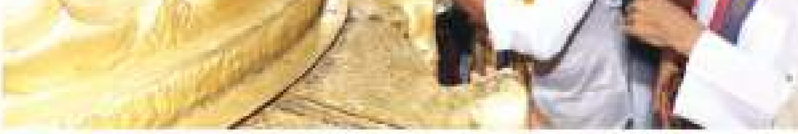

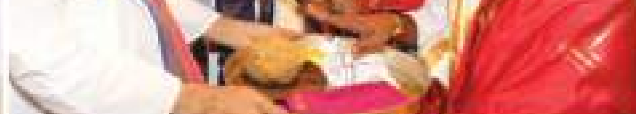

आंध्रप्रदेश के नूतन मुख्यमंत्री के रूप में पदभार स्वीकारने के
पहले दिन (३१.०५.२०१९) माननीय श्री वाई.एस.जगन मोहन रेड्डी जी ने
श्री बालाजी का दर्शन किया।

ति.ति.दे. कार्यनिर्वहणाधिकारी श्री अनिलकुमार सिंघाल, आई.ए.एस., और
तिरुमल संयुक्त कार्यनिर्वहणाधिकारी श्री के.एस.श्रीनिवासराजु, आई.ए.एस.,
ने श्री वाई.एस.जगन मोहन रेड्डी जी को श्रीवारि का तीर्थप्रसाद भेंट दिया।

सनातन भारतीय जीवन
आश्रम व्यवस्था

- श्री वेमुनूरि राजमौलि

"जन्तूनां नरजन्म दुर्लभम्" - यह आर्योक्ति है। पूर्व काल से लेकर आज तक अकसर बुजुर्ग लोगों के कहने की बात यही है। सृष्टि की प्राणि-कोटि में मानव के जन्म की प्राधान्यता तथा विलक्षणता बताने वाला महत्तर-सत्यवाक् है यह। अन्य जन्तुओं में या प्राणियों में दिखायी न देने वाले ज्ञान-विशेष व मनोविकास के कारण मानव, सृष्टि-रहस्य तथा भगवत्तत्त्व के बारे में विचार कर सका। वेद-काल के प्राचीन भारतीय ऋषियों ने अपने तपोबल, दर्शन-शक्ति, त्रिकालज्ञता से अपौरुषेय-वाणि, वेद-संहिताओं में निहित ईश्वरीय विज्ञान तथा मानव के जीवन तत्त्व को पहचान कर, स्मृतियों द्वारा हमें स्पष्ट रूप से बताया। सारे स्मृति ग्रन्थ, ऋषि-प्रोक्त ही हैं। उस समय की ऋषि-परंपरा को स्वयं आचरण करके बताये गये वैदिक-विज्ञान, आचार-व्यवहार, जीवन-विधान को ही हम वैदिक-संस्कृति, आर्ष-संस्कृति (ऋषि संबोधित) के नाम से पुकार रहे हैं।

"शतायु पुरुषः" - यह वेद-वाक्य है। इसका मतलब है, मानव का आयुः प्रमाण सौ साल। आयुर्वेद, ज्योतिषशास्त्र आदि ने बताया कि मानव का आयु-प्रमाण (१२०) एक सौ बीस साल है। किन्तु यह पाक्षिक सत्य ही है। क्वाचित्क है। "जीवाम शरदश्शतम्", नन्दाम शरदश्शतम्", मोदामशरदश्शतम्" कहकर प्रवचन करने वाली उपनिषद्वाणी ने भी निर्धारित किया कि मानव की आयु "शतमानं भवति।" लोकानुभव भी इसी सत्य को घोषित कर रहा है। मानव के जीवन में अभ्युदय (इह लोकोन्नति); निःश्रेयस (मोक्ष, परलोक की उन्नति) - दोनों की आवश्यकता है; इस भावना से इन दोनों को लक्ष्य बनाकर चतुर्विध (धर्मार्थकाममोक्ष) पुरुषार्थों की साधना के लिए आश्रम व्यवस्था कायम हुई। व्यक्ति के जीवन-काल के सौ सालों को नज़र में रखकर आश्रम-विभाग एवं आश्रम-धर्म निर्णय किये गये। अज्ञान-वश, पाशविक स्थिति में रहने वाले मानव-जीवन को, वेद-विद्या-विज्ञान से, सच्छीलता से एवं सत्कार्याचरण से सुधार कर, पवित्र बनाकर, अच्छे आध्यात्मिक मार्ग पर चलाकर दिव्यत्व प्राप्त कराना ही आश्रम-विधान का मुख्य उद्देश्य है। लगभग पच्चीस वर्षों को एक माप के रूप में स्वीकार करके सौ सालों के जीवन-काल को चार भागों में विभाजित करके हमारे पूर्वजों ने चार आश्रमों का निर्माण किया। क्रमशः, ये ब्रह्मचर्य, गार्हस्त्य, वानप्रस्थ तथा सन्यास के नामों से व्यवहृत हो रहे हैं। उन-उन आश्रमों के विधान एवं निर्देशित धर्म-सूत्र व नीति-नियम; मानव के अभ्युदय-निःश्रेयस की प्राप्ति के लिए निर्मित सोपान-पंक्तियाँ हैं; ऐसा हम भावना कर सकते हैं। सारे आश्रम-धर्म, ब्राह्मण आदि चतुर्वर्ण वालों के लिए आचरण योग्य ही हैं। सभी मानव मात्रों के लिए उपादेय (ग्रहण करने योग्य) ही हैं।

ब्रह्मचर्याश्रम

बाल्यावस्था में, मानव के भावी जीवन के लिए आवश्यक विद्याध्ययन, गुण-शील, शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक शक्तियों के समुपार्जन के लिए यह ब्रह्मचर्याश्रम स्थापित हुआ। मानव को ब्रह्म-ज्ञान-संपन्न बनाना इसका मुख्य लक्ष्य है।

जन्मना जायते शूद्रः कर्मणा जायते द्विजः।
वेदपाठी भवेद्विप्रः ब्रह्मज्ञानी च ब्राह्मणः।। - मनुस्मृति

माता के गर्भ से पैदा होने वाले सारे मानव प्रथम अवस्था याने शैशव व बाल्यावस्था में शूद्र ही होते हैं। उपनयन-संस्कार तथा सत्कर्माचरण के द्वारा द्विजत्व (दूसरा जन्म) पाते हैं। वेदाध्ययन से विप्रत्व; ब्रह्म-ज्ञान से ब्राह्मणत्व प्राप्त करते हैं। ब्रह्मचारी का अर्थ ब्रह्म में चरने वाला है। इसका मतलब यह नहीं है कि उसका विवाह संपन्न न हुआ हो। ब्रह्म का अर्थ वेद;

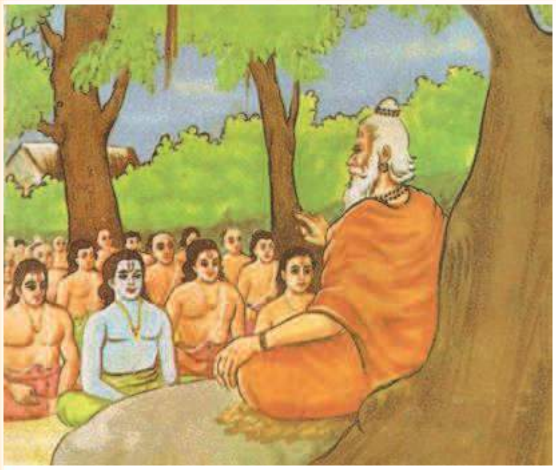

परमात्मा है। वेद का अध्ययन करते परमात्म-तत्त्व जाननेवाला है; ऐसा इसका तात्पर्य है। उन दिनों विद्या का अर्थ ब्रह्मविद्या ही है; वेदाध्ययन ही है। ''स्वाध्याय प्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यं'', ''धर्मं चर'', ''सत्यं वद'' जैसे नियमों को गुरु के कहे अनुसार ब्रह्मचारी को आचरण करना पड़ता है। जन्म प्रभृति, बालक को आठ वर्ष की आयु से लेकर बारह वर्ष की आयु के अन्दर विद्याभ्यास के लिए ब्रह्मचर्याश्रम में प्रवेश करना होगा। चारों वेदों में से प्रत्येक वेद को सद्गुरु की सन्निधि में ले जाना होगा। वहाँ गुरु के समक्ष, जो संस्कार संपन्न किया जाता है, उसे ''उपनयन'' कहते हैं। उप-समीप; नयन-ले जाना- ऐसा नयन शब्द का अर्थ है। इसी समय गुरु, वटु (विद्यार्थी को) गायत्री-मन्त्र का उपदेश देते हैं। ''न गायत्र्याः पर मन्त्रम्, न मातुः परदैवतम्'' - गायत्री से बढ़कर कोई मन्त्र नहीं है, माँ से बढ़कर कोई देव नहीं है; ऐसा दृढ़ विश्वास वटु में भर दिया जाता है। ब्रह्मचारी को, आश्रम में रहकर प्रति नित्य गुरु-शुश्रूषा करते वेदाध्यायन के द्वारा इन्द्रिय-निग्रह, सच्छीलता, प्राप्त करना; शरीर को भोग-विलासों की ओर न जाने देना; ब्रह्मतेज को सुदृढ़ बढ़ा लेना; दीर्घायु के लिए आवश्यक आरोग्य-जीवन, बल का समुपार्जन कर लेना पड़ता है। आत्मोद्धरण के लिए आवश्यक धर्मतत्व, समस्त कार्यकलापों का अभ्यास, ब्रह्मचर्याश्रम में ही करना पड़ता है। अहंकार; अज्ञान; काम, क्रोध आदि अरिषड्वर्गों पर विजय प्राप्त करना; त्रिकरण-शुद्धि व स्थिर चित्त के साथ, ब्रह्मचर्य-व्रत का आचरण करना; मधुकरी ग्रहण करके, बारह वर्ष कठोर श्रम करके वेद-सरस्वती की उपासना करके वश में कर लेना इत्यादि को ब्रह्मचर्याश्रम में सीखना विद्यार्थी-वटु का मुख्य धर्म है।

गृहस्थाश्रम

समस्त वैदिक व लौकिक धर्मों का निर्वहण करने की प्रज्ञा एवं शिक्षण को प्राप्त करने वाले विद्यार्थी को गृहस्थाश्रम स्वीकार करना होगा। गुरुकुल-वास समाप्त करके ब्रह्मचारी अपने घर लौट आने को ''समावर्तन'' कहते हैं। योग्य कन्या से विवाह संपन्न करने, बडों की आज्ञा पाकर अभ्यंगस्नान पूर्वक ब्रह्मचर्य व्रत-दीक्षा त्यागने को ''स्नातक'' कहते हैं। ब्रह्मचर्याश्रम में विहित सारे निषेध स्नातक से दूर होते हैं। ब्रह्मचारी, गृहस्थाश्रम स्वीकार करने योग्य बनता है। ब्रह्मचर्य में जो निषिद्ध काम थे, उन्हे अब कर सकता है। मुकुर (शीशा) में अपना प्रतिबिंब देख सकता है; अपने को साज ले सकता है; पलंग पर सो सकता है; कन्या का मुख देख सकता है; जरूरत पड़े तो उसके अभीष्ट के अनुसार उससे विवाह कर ले सकता है।

आयु में दूसरा भाग-याने पच्चीस वर्ष की आयु से लेकर पचास वर्ष के आने तक मानव, गृहस्थाश्रम में रहता है। मानव के जीवन में यह प्रधान आश्रम है।

द्वितीय मायुषो भागं कृतदारो गृहेवसेत्। - मनुस्मृति।

जीवन के इस दूसरे भाग में पच्चीस साल गृहस्थ अपनी पत्नी के साथ निवास करता है; गृहस्थ धर्मों का निर्वहण करता है। इंद्रिय सुखों के लिए विवाह कर लेना, भारतीय-सम्प्रदाय नहीं मानता है। धर्म, अर्थ, कामों को दृष्टि में रखकर मानव को व्यष्टि व समाज परक अनेकों सत्कार्य, सद्व्रतों का आचरण करना पड़ता है। धर्म निर्वहण के लिए पत्नी को स्वीकार करने से, गृहस्थ की पत्नी को, ''धर्मपत्नी'' कहते हैं। बिना पत्नी का घर, एक घर नहीं होता। ''गृहणी गृहमुच्यते'' - गृहस्थाश्रम में धर्म-पत्नी का कैसा स्थान है; विशद होता है। गृह माने गृहिणी ही है; घर याने घर वाली ही है। वह यजमान (घर का मुखिया) की अर्धांगी है; उसका आधा शरीर है। गृहपति, उसके सहयोग से गार्हस्था-धर्म निभाता है। गृहस्थ,

इच्छानुसार विश्रृंखल रूप से काम, पुरुषार्थों का दुरुपयोग न करते निग्रह के साथ धर्म-मार्ग पर चलाकर, उसमें पवित्रता की सुगन्ध भरकर आगे बढता है। धर्म-पत्नी का एक अन्य नाम जाया है। यजमान के लिए जाया भी माता की तरह आदरणीया है। जिस प्रकार माँ ने अपने को जन्म दिया; उसी प्रकार पत्नी भी परोक्ष रूप से (सन्तान के रूप में) अपने को जन्म देती है। पति, पत्नी के गर्भ में सूक्ष्म रूप में प्रवेश करके, पत्नी को माता के रूप में मान कर नौ महीने बिता कर, उसकी कोख से नये रूप में संतान बनकर पैदा हो रहा है। पति, पत्नी के गर्भ से पैदा हो रहा है; इसीलिए उसका नाम जाया पड़ गया। गृहस्थाश्रम का प्रधान धर्म सन्तान प्राप्त करना मात्र है।

''पतिर्जायं प्रविशति नवमे मासिजायते
तज्जाया जाया भवति यस्यां जायते पुनः'' - ऐसा वेद कहता है।

गृहस्थाश्रम में प्रधान रूप से ''ऋणत्रयापाकरण'' - धर्म का आचरण मानव को करना होगा याने तीन ऋणों से उर्ऋण होना होगा। ''जायमनोनरः त्रिभिः ऋणवान् जायते'' - कहकर तैत्तरीय बताता है। जन्म लेनेवाला प्रत्येक मानव तीन ऋणों से पैदा होता है। वे हैं; ऋषि-ऋण, देव-ऋण तथा पित्रूणं। ब्रह्मचर्य-व्रत के द्वारा याने वेद का अध्ययन करके, उस धर्म का आचरण करने से ऋषिऋण से मुक्त होता है। यज्ञ का निर्वहण करके देव-ऋण; सन्तान पाकर पितृ-ऋण से मानव मुक्त हो सकता है; ऐसी वेदोक्ति है। इनके साथ-साथ मुखिया को मनुष्य-यज्ञ, भूत-यज्ञ भी संपन्न करना पड़ता है। ये, प्रति दिन गृहस्थ के लिए आचरणीय पंच महा यज्ञ हैं। यज्ञों का आचरण करने वाला होने से ''यजमान'' नाम पड़ गया।

जिस प्रकार सारे जन्तु अपनी माँ का आश्रय पाकर जी रहे हैं, उसी प्रकार सारे मानव, गृहस्थ का आश्रय लेते हैं। परोपकार करना, गृहस्थ का प्रधान कर्तव्य है। गृहस्थ को अर्थशौच का आचरण करना होगा। अधिक धन इकट्ठा नहीं करना है; आप जीते हुए दूसरों को जीने देना होगा। इस प्रकार गृहस्थ को देवताओं; पितृदेवताओं; ऋषियों; मानवों; पशुपक्ष्यादियों; क्रिमि-कीटकों; तरु-लतादि गुल्म इत्यादि सर्व प्राणियों की रक्षा करनी पडती है- ऐसा धर्म-शास्त्र कहता है। शमदमादि गुणों व सच्चीलता से यज्ञमय (त्यागमय) जीवन-यापन करते धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष पुरुषार्थों का आचरण करते गृहस्थ को मुक्ति के लिए पुण्यफल की गठरी बाँध लेनी होगी।

गृहस्थाश्रम में पति-पत्नी, दोनों को, मिलकर एकही शरीर; एक ही मन; एक ही बात; एक ही लक्ष्य के साथ दाम्पत्य-जीवन व्यतीत करना होगा। धर्म, अर्थ, काम के व्यवहारों में अपनी अर्धांगिनी की सलाह-मशविरा लिये बिना चरना नहीं चाहिए। इस प्रकार आह्लाद-भरित दाम्पत्य-जीवन बिताना

होगा। सत्संतान पाकर, इस प्रकार करने से संतुष्टि पहुँचाने वाली परोपकार-पारीणता, दान-धर्म, पर-जनोपसेवन के प्रशान्त वातावरण में गृहस्थाश्रम आगे बढ़ सकता है। सारे आश्रमों में से गृहस्थाश्रम माँ के बराबर है; मूर्धन्य है; सारे आश्रमों का आधारभूत है। उत्तम व उदात्त आश्रम है, गृहस्थाश्रम।

वानप्रस्थाश्रम

वानप्रस्थ का अर्थ वन में जाना है। अपनी धर्म-पत्नी के साथ पच्चीस साल पवित्र जीवन बिताने वाले मानव को पचास साल की उम्र पार करने के बाद वानप्रस्थाश्रम स्वीकार करना होगा। आयु रूपी सूर्य पश्चिम की ओर झुकने के बाद; याने शरीर पर जब झुर्रियाँ पड़ने लगती हैं, बाल पकने लगते हैं; अपनी सन्तान को सन्तान की प्राप्ति होती है, तब ही वानप्रस्थ-स्वीकार करना है; ऐसा वेद बताता है। वार्धक्य के चिह्न उभर आते ही सांसारिक प्रवृति की ओर से मन को पलटा कर, इन्द्रियों का निग्रह करके परमार्थ साधन की ओर जीवन का प्रस्थान करना चाहिए। ऐहिक लंपटता (कामुकता) त्याग कर, वैराग्य-भावना को बढ़ावा देना चाहिए। इस प्रयत्न में

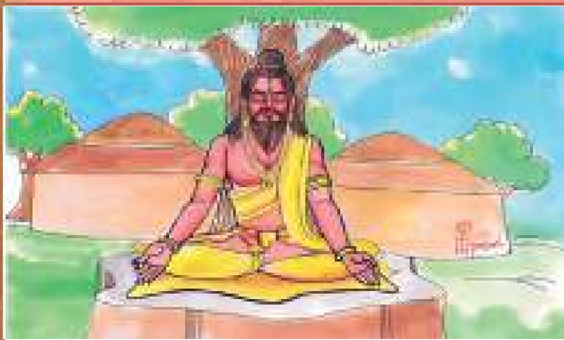

अर्धांगिनी को भी साथ रहकर यथा शक्ति सहयोग देने की आवश्यकता है। "वने वसेत् नियतो यथावद्विजितेंदियः" - वानप्रस्थ का प्रधान धर्म है। याने इन्द्रियों का दमन करके वन में जीवन बिताना है। उसे जिह्वा-चापल्य नहीं होना चाहिए। आहार-विहारों में नियम-निग्रहों की आवश्यकता है। पत्नी के साथ सह जीवन यापन करने पर भी ब्रह्मचर्य का आचरण करना अत्यन्त आवश्यक है। वानप्रस्थ, अपनी धर्म-पत्नी को साथ ले जा सकता है। अथवा पुत्र के संरक्षण में छोड़कर जा सकता है। वन में कन्द-मूल फलों का भक्षण करते परमात्म-चिन्तन में निमग्न हो तप करना होगा। यथा प्रकार पंच महा यज्ञों, उपवास व्रतों का आचरण करना होगा। निरंतर प्रयत्न व साधना से क्रमेण मन को प्रवृत्ति-मार्ग की ओर से निवृत्ति मार्ग की ओर मोड़ना चाहिए। निग्रह-शक्ति द्वारा वैराग्य की साधना कर सकते हैं। सन्यासाश्रम स्वीकारने के लिए आवश्यक गुण-संपत्ति, परिपक्व-चित्त, वैराग्य भावना को वानप्रस्थ दशा में ही प्राप्त करना होगा।

सन्यासाश्रम

सन्यास का अर्थ समस्त सांगत्यों को त्यागना है। सन्यासी को किसी भी प्रकार की इच्छा नहीं रहनी चाहिए। मानव-जीवन के चौथे भाग के चरमांक में, (७६) छहत्तर वर्ष की आयु में स्वीकार किया जानेवाला आश्रम है यह। यदि किसी व्यक्ति में सहज ही भक्ति-वैराग्य-भाव तथा सन्यासाश्रम स्वीकार करने की तीव्र उत्कंठा पैदा हो जाय तो वह सीधा ब्रह्मचर्य आश्रम अथवा गृहस्थाश्रम या वानप्रस्थाश्रम से सन्यासाश्रम स्वीकार कर सकता है। सन्यासी को अनश्वर (नाश रहित) आत्म-पदार्थ, परमार्थ (धर्म-चिन्तन) पर ममता रहनी चाहिए न कि नश्वर सुख-भोगों पर। इंद्रिय चपलता, अर्थ-संचय की इच्छा होनी ही नहीं चाहिए। मधुकरी पर जीवन यापन करना होगा। भिक्षा लेने ही गाँव में जाना होगा। एक ही गाँव में रहना नहीं चाहिए। संचारी बनकर गाँव-गाँव फिरते रहना चाहिए। सुख-दुःख, राग-द्वेषों के अतीत होना चाहिए। "नाभिनंदेत मरणं नाभिनंदेत जीवितम्" की भावना से रहना चाहिए। याने मरण अथवा जीवन की इच्छा नहीं करनी चाहिए। सदा सारे चराचर जगत में परमात्म-तत्त्व का दर्शन करना होगा। सन्यासी को जिन विधि-नियमों का आचरण करना पड़ता है, उनका वर्णन विस्तार से स्मृति-ग्रंथों, धर्म-सूत्रों में व्यक्तीकरण किया गया है। मानव-जीवन का चरम लक्ष्य मुक्ति पाना है। इसके लिए मूल धन, भक्ति-वैराग्य हैं। इनका विकास कर लेना ही, इन नियमों का मूल उद्देश्य है।

दुर्लभ मानव-जीवन को, क्रमेण सतत साधना द्वारा अत्युन्नत स्थिति तक पहुँचाने के लिए ही सनातन भारतीय-समाज में आश्रम व्यवस्था का निर्माण हुआ; ऐसा हम भावना कर सकते हैं। मानव-जीवन का लक्ष्य चतुर्विध पुरुषार्थ प्राप्त करना है। इसके लिए काम आनेवाला जीवन-विधान ही चतुर्विध आश्रम-व्यवस्था है। मानव के ऐहिक, आध्यात्मिक जीवन की सफलता के लिए रचित सार्थक बृहत प्रणालिका है, यह आश्रम-व्यवस्था।

शुभम्

तेलुगु मूल - श्री आरुट्ला भाष्याचार्युलु।

साभार - श्रीमता (धार्मिक मासिक-पत्रिका)।

(गतांक से)

श्री प्रपन्नामृतम्

भगवद्रामानुजाचार्य का अवतार

(दूसरा अध्याय)

मूल लेखक - श्री स्वामी रामनारायणाचार्यजी

प्रेषक - श्री रघुनाथदास रान्दड

दक्षिण-पूर्वी समुद्र से तीन योजन पश्चिम तोंडिर प्रदेश (वर्तमान-तमिलनाडु प्रदेश) में भगवान विष्णु को अत्यन्त प्रिय लोकत्रय विख्यात-धनधान्यादि समृद्ध, भूतपूरी पेरुम्बुदूर नामक एक नगरी है। जहाँ पान, जायफल, मौलश्री, पीपल, चन्दन आदि वृक्षों, कदलीवन की सघन पंक्तियों, मदमस्त कोकिल, मयूर सारिकाओं की चहकन, मदभरे भ्रमर एवं पंकज पूर्ण सरोवरों से इस नगरी की शोभा अत्यन्त बढ़ रही थी। यहाँ के उद्यानों में स्त्री एवं पुरुष विहार करते थे। विभिन्न स्थानों पर ब्राह्मणवृन्द वेद-पाठ करते थे। काव्य, नाटक, वेदपाठ, ब्रह्मघोष, न्याय एवं व्याकरण का सतत् अभ्यास करते हुए विद्वानों से यहाँ की दिशायें ध्वनित होती थीं। इस नगरी के चारों दरवाजों पर वीर द्वारपाल नियुक्त थे। इस नगरी की शोभा मन्दिरों के ऊँचे गोपुरों, विशाल राजमार्ग पर चलते हुए मनुष्यों एवं उत्तमोत्तम भवन पंक्तियों से हो रही थी।

इसी मनोहारी नगरी के महायज्वा, प्रहाप्रज्ञ, शास्त्रज्ञ, वेदान्ती सत्वक्ता, सदाचारी, जितेन्द्रिय, भगवत्पाद कर्मयोगी एवं अल्पाहारी इत्यादि सर्वगुणगण विभूषित हारीत कुलोद्भूत केशवाचार्य नामक वैष्णवोत्तम ब्राह्मण सदा भगवान् का ध्यान किया करते थे।

एक समय महोदधि में स्नानार्थ चन्द्रग्रहण के अवसर पर श्रीवैष्णव श्री केशवाचार्यजी सपत्नीक कैरविणी तीर्थ में स्नान करके समुद्र में स्नान कर पुत्रेच्छा से कुछ काल तक वहीं निवास करते हुए उस दिव्यदेश के भगवान पार्थसारथी की नित्य-नियमित प्रार्थना करने लगे। कुछ दिनों के बाद उन्होंने पुत्रेष्टियाग किया, जिससे प्रसन्न होकर भगवान पार्थसारथी ने स्वप्न दिया कि- ''मैं ही अपने अंश से आपके पुत्र रूप में अवतार लूँगा।''

कुछ काल व्यतीत होने पर केशवाचार्यजी की धर्मपत्नी कान्तिमती देवी ने गर्भ धारण किया। इसके बाद मेष राशि के सूर्य होने पर चैत्र शुक्ल पंचमी गुरुवार को शिशु रामानुज का अवतार हुआ। जिस तरह माता कौशल्या के गर्भ से भगवान् रामचन्द्र का, माता अदिति के गर्भ से भगवान वामन का, माता देवकी के गर्भ से भगवान श्रीकृष्ण का एवं माता रोहिणी के गर्भ से श्रीबलरामजी का प्रादुर्भाव हुआ उसी तरह कर्क लग्न के अभिजित मुहूर्त में अमित तेजस्वी फणिराज श्रीशेष का रामानुजाचार्य के रूप में अवतार हुआ जिससे भूतपुरी महान पुण्यमयी हो गयी।

भगवान रामानुजाचार्य की तनियन पाठ करते हुए आज भी भागवतवृन्द गाते हैं -

चैत्रार्द्रसम्भवं विष्णोदर्शनस्थापनोत्सुकम्।
तोंडीरमण्डले शेषमूर्ति रामानुजं भजे।।

अर्थात्- ''चैत्र मास के आर्द्रा नक्षत्र में अवतीर्ण, श्रीविशिष्टाद्वैत दर्शन के संस्थापक, शेषमूर्ति भगवान श्रीरामानुजाचार्य की मैं वन्दना करता हूँ।''

अपने बान्धवों के साथ उदीयमान पुत्र को देख कर माता कान्तिमती सहित श्री केशवाचार्य स्वामीजी प्रसन्न होकर ब्राह्मणों को पुष्कल दान देकर सभी भूतपुरी निवासियों को अपने-अपने घर में हरिद्रा एवं तेल से स्नानोत्सव मनाने का आग्रह किये। तदन्तर अपनी बहिन कान्तिमती देवी के गर्भ से पुत्रोत्पत्ति का शुभ समाचार सुनकर श्री शैलपूर्ण स्वामीजी भूतपुरी आकर असामान्य तेजस्वी एवं महदात्मा शिशु का दर्शन करके अत्यन्त प्रसन्न हुए। जन्म के बारहवें दिन श्री शैलपूर्णस्वामी से चक्रांकित कराकर श्री केशवाचार्य स्वामी ने अपने पुत्र का लौकिक नाम ''रामानुज'' रखा। उस सर्वांग सुन्दर प्रतिदिन सूर्य की तरह वर्द्धमान् शिशु को देखकर विस्मित विद्वान ब्राह्मणों ने विचारा कि - यह शिशु तो अवश्य ही शेष अथवा श्री विष्वक्सेन का अवतार है। क्योंकि शिशु रामानुज के अवतरित होते ही पापात्मा कलि का मानों विलय हो गया और धर्म चारों पैर से पृथ्वी पर प्रतिष्ठित हो गया। जिससे महात्माओं और धर्मात्माओं के मन प्रसन्न हो गये।

पुत्र रामानुज की आजानुबाहुओं, कमल की भाँति मनोहर नेत्रों, ज्योत्स्ना की तरह स्निग्ध शरीर, कमलदल की कोमलता लिए हुए हाथ-पैरों को देख-देखकर श्री केशवाचार्यजी अत्यन्त प्रमुदित होते थे। अन्त में महायशस्वी इस शिशु का विचार कर विद्वान् ब्राह्मणों ने घोषित कर दिया कि यह शिशु श्रीशेष का अवतार है। श्री केशवाचार्य स्वामीजी ने बच्चे का अन्नप्राशन, मुण्डन एवं यज्ञोपवीत इत्यादि संस्कार करके गर्भ के आठवें वर्ष में सांगवेदों का स्वयं उपदेश देकर अध्ययन समाप्तिकाल में सौरप्रभापूर्ण श्रीरामानुजाचार्य का १६ वर्ष की अवस्था में विवाह-संस्कार सम्पन्न किया। ''कालो हि दुरतिक्रमः'' के अनुसार श्री केशवाचार्य जी तदन्तर भगवान के नित्य मुक्त पार्षदों से सेवित परमपद चले गये। पितृवियोग जन्य शोक को ज्ञान द्वारा सहनकर श्रीरामानुजाचार्य ने पिता की अन्त्येष्टि क्रिया सविधि सम्पन्न करके कुछ काल तक माता एवं पत्नी के साथ भूतपुरी में ही निवास करते रहे, फिर अपने ''समस्त शास्त्रों का ज्ञान सम्पादन करूँगा'' प्रतिज्ञा के अनुसार, प्रख्यातकीर्ति यादवप्रकाशाचार्य का यश सुनकर सपरिवार पेरम्बुदूर से कांचीपुरी में आकर, यादव प्रकाशाचार्य की सन्निधि में प्रतिदिन अध्ययन करने लगे।

।। श्रीप्रपन्नामृत का दूसरा अध्याय पूर्ण हुआ ।।

(क्रमशः)

तिरुमल तिरुपति देवस्थान, तिरुमल।

कल्याणकट्टा

१. यहाँ के कर्मचारियों को कोई भेंट मत दीजिए।

२. पानी को व्यर्थ न बहायें।

३. तीन मुट्ठिभर केश कटवाने के लिए कृपया ब्लेड मत लीजिए। केवल शिरोमुंडन करवानेवाले ही ब्लेड और चंदन लीजिए।

४. ब्लेड और चंदन श्रीहरि की संपदा है, व्यर्थ न करें।

५. जूते पहनकर अंदर प्रवेश करना मना है।

६. कल्याणकट्टा में छायाचित्र व वीडियो खींचना मना है।

युवता

भगवद्गीता और नौजवान

तप व्दारा पूर्ण सफलता

तेलुगु मूल - डॉ.वैष्णवाँघ्रि सेवक दास

हिन्दी अनुवाद - श्री अमोघ गौराँग दास

वाहनों को चलाने के लिए इंधन की आवश्यकता होती है, वाहनों के इंजन को क्रियाशील करने के लिए बैटरी की आवश्यकता होती है, एक मनुष्य को तेजी से दौड़ने के लिए ऊर्जा की आवश्यकता होती है। इसी प्रकार पूर्ण सफलता की प्राप्ति के लिए तपस्या की आवश्यकता होती है। सफलता चाहे सामान्य हो या विश्वस्तरीय, दोनों को प्राप्त करने के लिए तपस्या की आवश्यकता होती है। लेकिन वास्तव में तपस्या क्या है? केवल तपस्या के अभाव के कारण ही लोग जीवन के सुनहरे अवसर खो देते हैं। तपस्या करने से शारीरिक थकावट होती है, लेकिन परिणाम स्वरूप तप की कठोरता के अनुपात में ऊर्जा भी उत्पन्न होती है। मृत्यु से छुटकारा पाने के लिए हिरण्यकश्यप नामक राक्षस ने दस हजार वर्षों तक तपस्या की थी। श्रीमद्भागवतम् में इसका वर्णन है। आज भी भारतीय प्रौद्यौगिकी संस्थानों (आई.आई.टी.) में प्रवेश प्राप्त करने के लिए विद्यार्थियों को बहुत तपस्या करने की आवश्यकता होती है। लेकिन वे उसे तपस्या के रूप में नहीं जानते हैं। उनका सोचना है कि वे कठोर परिश्रम करते हैं, तपस्या नहीं। इसी कारण अंतिम परिणाम की प्राप्ति में उनका विश्वास कम हो जाता है।

भोग तपस्या का विलोम है। अनियंत्रित रूप से भोग करने वाले व्यक्ति का समय केवल मनोरंजन में चला जाता है और निश्चित रूप से उसकी ऊर्जा समाप्त हो जाती है। लेकिन तप करने वाला व्यक्ति अधिक मात्रा में ऊर्जा संचित करता है। जीवन के किसी भी क्षेत्र में विजय पाने के लिए तपस्या की आवश्यकता होती है। वास्तव में तप सफलता प्राप्ति के लिए आवश्यक योग्यता है। अतः विजय प्राप्ति के इच्छुक व्यक्ति को तप के बारे में भगवद्गीता के उपदेश को अवश्य जानना चाहिए। उन्हे इसे समझकर, सीख कर एवं इससे ऊर्जा प्राप्त करके वाँछित सफलता प्राप्त करनी चाहिए।

भगवद्गीता में सत्रहवें अध्याय के चौदहवें, पंद्रहवें एवं सोलहवें श्लोकों में सभी के लाभ के लिए तीन प्रकार के तप बताये गये हैं। विद्यार्थियों एवं युवाओं को अपने प्रयत्नों में सफल होने के लिए इन्हे अवश्य सीखना चाहिए।

''भगवान, ब्राह्मणों, गुरु, माता-पिता की पूजा करना तथा पवित्रता, सरलता, ब्रह्मचर्य और अहिंसा ही शारीरिक तपस्या है।'' (भगवद्गीता १७.१४)

''सच्चे, भानेवाले, हितकर तथा अन्यों को क्षुब्ध न करने वाले वाक्य बोलना और वैदिक साहित्य का नियमित पारायण करना-यही वाणी की तपस्या है।'' (भगवद्गीता १७.१५)

''तथा संतोष, सरलता, गम्भीरता, आत्म-संयम एवं जीवन की शुद्धि - ये मन की तपस्यायें हैं।'' (भगवद्गीता १७.१६)

अर्यात भगवद्गीता में उपर्युक्त में तीन तपों को करने का सुझाव दिया गया है। ये शारीरिक स्तर पर, वाणी के स्तर पर एवं मन के स्तर पर किये जाने वाले तप हैं। एक कहावत है कि ''वरिष्ठ व्यक्तियों का सुझाव पौष्टिक आहार की भाँति होता है''। वर्तमान समय में सभी लोग वरिष्ठ व्यक्तियों को सम्मान देना भूल गये हैं। इसी कारण सभी लोग वरिष्ठ व्यक्तियों की सेवा से प्राप्त होने वाली अपार शक्ति से वंचित हैं। किसी कार्य के कर्ता द्वारा वरिष्ठों एवं शुभचिन्तकों के प्रति आभार प्रकट करने एवं सच्चे हृदय से उनकी सेवा करने से उसके अन्दर प्रचुर मात्रा में ऊर्जा का प्रवाह सुनिश्चित हो जाता है।

वाणी को संयमित रखना एक बडी तपस्या है। सामान्यतः लोग नकारात्मक बोलने के आदि है जैसे ''मुझसे यह नहीं होगा'', ''यह इण्टरव्यू मेरे लिए कठिन होने वाला है'', ''मुझे आई.आई.टी. में प्रवेश नहीं मिल सकता है'' आदि। ऐसे नकारात्मक शब्द बोलते रहने से अंत में परिणाम भी वही हो जाता है। अतः प्रत्येक व्यक्ति को सदैव सकारात्मक शब्द बोलना सीखना चाहिए, यही वाणी की तपस्या है। शास्त्रों का पठन भी तपस्या है। अन्यों को क्षुब्ध करने वाले कठोर शब्द कभी नहीं बोलने चाहिए। बोलने वाले शब्दों की तपस्या से प्रचुर ऊर्जा मिलती है जिससे सफलता प्राप्त होती है।

वर्तमान समय में मन की तपस्या बहुत महत्वपूर्ण है। व्यर्थ के विचारों से अकारण ही मन को क्षुभित नहीं करना चाहिए। व्यर्थ की बातें करने से मन क्षुभित हो जाता है। ''मैं सफल बनूँगा'', ''मुझे विजय प्राप्त होगी'' और ''मैं स्वच्छंदता से प्रसन्न रहूँगा'' - यह बार-बार कहने से ही उदासी एवं निराशा समाप्त हो जाती है। ''भगवद्गीता सफलता का मार्ग है'' - इस दृढ कथन से ही विद्यार्थी भय से मुक्त हो जाते हैं। अतः विद्यार्थियों एवं युवाओं को इन तीन प्रकार के आवश्यक तपों द्वारा पूर्ण सफलता प्राप्त करने का सुझाव दिया जाता है। इन तपों को पूर्णता से सीखने पर अपने कठिन लक्ष्यों को निश्चित रूप से प्राप्त किया जा सकता है। इससे कोई संदेह नहीं है। निश्चित लक्ष्य वाला तपस्वी व्यक्ति जीवन के हर क्षेत्र में विजयी होता है और अन्यों के लिए प्रेरणास्त्रोत बन जाता है।

❊

तिरुमल तिरुपति देवस्थान, तिरुपति।

पाठकों केलिए सूचना

हर महीने सप्तगिरि मासिक पत्रिका आपको समय पर नहीं मिलता, तो आप प्रधान संपादक कार्यालय के कार्यरत समय में निम्न लिखित दूरभाष से संपर्क कर सकते हैं। पत्रिका तुरंत भेजा जायेगा।

आप फोन पर आपका चंदा नंबर, पता, अपने प्रांत का पोस्टल पिन कोड, मोबाइल नंबर सही ढंग से बताइये।

प्रधान संपादक कार्यालय का दूरभाष :

०८७७-२२६४५४३.

कोनेटिराया! कीलपट्लाधीशा!!

तेलुगु मूल - श्रीमती एम.उत्तरफल्गुनी
हिन्दी अनुवाद - डॉ.बी.के.माधवी

स्थलपुराण

श्री महाविष्णु लोककल्याण के लिए श्रीवैकुंठ को छोडकर कोनेटिरायस्वामी के रूप में पृथ्वी पर विराजित महिमान्वित क्षेत्र ही कीलपट्ला गाँव है। चित्तूर जिले में पलमनेर के समीप गंगवरं मंडल में एक छोटा सा गाँव कीलपट्ला है। इस गाँव में आविर्भूत प्रसन्न वेंकटेश्वर स्वामी के विग्रह, तिरुमल के श्री वेंकटेश्वर स्वामी विग्रह के समान रहने के कारण तिरुमल जैसे प्राचीन कहा जा रहा है।

पहाडों, झीलों, जंगलों के बीच प्राकृतिक सौंदर्य से दर्शन मात्र से मन को आह्लाद पहुँचानेवाला पवित्रक्षेत्र कीलपट्ला है। छोटा तिरुपति नाम से प्रसिद्ध कीलपट्ला का असली नाम कोटिपल्लि है। चोलराजाओं के काल में युद्ध सिपाहियों के मुख्य ''पटालं'' जंगल से भरा प्रांत कोटिपल्लि के समीप रहा था। छोटा झुंड (पटालं) रहनेवाले जगह होने के कारण उस जगह को ''कील्पटालं'' नाम से पुकारते थे। जनप्रवाह में कील्पटालं, कील्पट्टु, कील्पट्टणं, कील्पट्ला नाम से स्थिर हुआ था।

यह प्रतीति है कि कीलपट्ला के श्री वेंकटेश्वर स्वामी को ब्रह्म मानस पुत्र भृगुमहर्षि ने प्रतिष्ठित किया है। भृगुमहर्षि महासंपन्न है। त्रिमूर्तियों की परीक्षा करके, समस्त यज्ञों के अधीश्वर बनाकर, परतत्त्व के रूप में श्री महाविष्णु को निर्णय किये महाघन है। शासनाधारों के द्वारा विदित होता है कि - ''जनमेजयमहाराज काल में इस मंदिर का निर्माण हुआ है, पल्लवराजाओं, चोलराजाओं ने इस मंदिर का पुनर्निर्माण किये है।'' पल्लवों के काल में भक्तजन श्री प्रसन्न वेंकटेश्वर के नाम से स्वामी को पुकारते थे। लक्ष्मीदेवी अपने निवासस्थान वक्षःस्थल पर भृगुमहर्षि ने पैर से मारने से विष्णुभगवान पर नाराज होकर प्रणयकलह से भूलोक में आयी। विष्णुभगवान ने लक्ष्मीदेवी को खोजते हुए वैकुंठ को छोडकर श्रीवेंकटाचल आया था। परतत्त्व श्रीयःपति ने आकाशराजु की पुत्री पद्मावतीदेवी से विवाह किया था। पुराण गाथा के अनुसार कहा जाता है कि - भक्तजनों के संरक्षणार्थ लक्ष्मी-पद्मावतियों के साथ कलियुग में कई जगह दुष्टशिक्षणा, शिष्टरक्षणार्थ अर्चावतार के रूप में श्रीवेंकटेश्वर नाम से आविर्भूत हुआ है।

सप्तगिरीश मंदिर के समान मंदिर ही कीलपट्ला श्रीवेंकटेश्वर स्वामी का मंदिर है। पल्लव, चोल, विजयनगर राजाओं ने इस मंदिर की अभिवृद्धि के लिए कई तरह कृषि किये हैं।

एकबार कीलपट्ला मंदिर के अर्चक, भक्त, डाकुओं के हाथों से संरक्षण करने के लिए श्री वेंकटेश्वर स्वामी, माताओं के विग्रहों को बहुत चालाकी से (खींचकर) निकालकर, रेशम के कपडों में बाँधकर मंदिर के ईशान्य दिशा में रहनेवाले स्वामी की पुष्करिणी के अंदर किसी को नहीं दिखाने के जैसे सुरक्षित किये हैं। पंचलोह विग्रहों को, हुंडी के धन, आभरणों को भी ऐसे ही सुरक्षित किये हैं। इस प्रकार सौ साल से ज्यादा वटपत्रसाई उस पुष्करिणी में ही घुसकर रहा।

उसके बाद पुंगनूर जमींदार को स्वामी सपने में आकर उसे पुनःप्रतिष्ठित करवाकर, नित्य धूप-दीप, नैवेद्यों से विराजमान होने के जैसे करवाये। पुष्करिणी में जलधि में रहकर वहाँ से निकालकर प्रतिष्ठित किये स्वामी को तब से लेकर 'कोनेटिरायुडु' नाम से कीर्तित हो रहा है। अन्नमाचार्य ने अपने संकीर्तन में कीर्तित किये कोनेटिराय यही हैं।

वैकुंठवास श्रीहरि भक्त संरक्षणा के लिए मोक्षप्रदाता के रूप में वेंकटेश्वर के नाम से अलमेलुमंगम्मा भक्तजनों के कामितार्थों को प्रसादित करते हुए कीलपट्ला में स्थित हुए हैं।

मंदिर की ऐतिहासिक विशेषताएँ

श्री महाविष्णु ने जब पहली बार भूलोक आकर अवतार लेने के बाद तुंबुरुतीर्थ प्रांत में तपोनिष्ठा में रहे भृगुमहर्षि की इच्छा के अनुरूप तिरुमल की पश्चिम दिशा की ओर शेषाचल पर्वतपाद पवित्र प्रांत में सात योजनाओं के दूर पर स्थित कीलपट्ला में सालग्राम रूप में आविर्भूत हुए है। वापस स्वामी ने तिरुमल जाकर स्वयं भृगुमहर्षि से कहा कि वह खुद कीलपट्ला गाँव में आविर्भूत हुआ है। महर्षि ने इसका आधार पूछा। इससे स्वामी ने जंगलों के बीच अपने सात कदम पैरों के चिह्न ही आधार के रूप में दिखाया था। वे आज भी जंगल के बीच तिरुमल तक स्वामी के पवित्र कदमों के चिह्नों को पत्थरों पर देख सकते हैं।

तब भृगुमहर्षि ने पूछा कि - "आप वहाँ जाकर आने का विषय हमें कैसे पता चलेगा?" "तब स्वामी ने जवाब दिया कि - रात के समय तिरुमल से कीलपट्ला तक गगन मार्ग में दिखाई देनेवाली चाँदिनी की रोशनी मार्ग ही इसका संकेत है।" इसके बाद भृगुमहर्षि ने स्वयं यहाँ आकर स्वामी को प्रतिष्ठित किये है। इसके बाद परीक्षित महाराज के वारिस जनमेजय महराज ने स्वामी को एक छोटा सा मंदिर बनवाये थे।

इसके बाद विजयनगर राजाओं के समय में कीलपट्ला मंदिर विशेष प्रचार पायी है। तिरुपट्ला, छोटा तिरुपति के रूप में वे प्रमुखस्थान दिलवाये हैं। तिरुमल में कीलपट्ला स्वामी की महिमाओं को सुनने के बाद अन्नमाचार्य ने भी कई बार कीलपट्ला संदर्शन करके कई कीर्तनों की रचना की है। इस जंगल के रास्ते में कई चावडियों में आराम लिये हैं। पश्चिम दिशा की ओर से तिरुमल जानेवालों को मुख्य महाप्रवेश के रूप में (गेट वे आफ तिरुमल) प्रख्यात पायी है।

स्वामीजी के आलयमंटप

श्री वेंकटेश्वर स्वामी, अलमेलुमंगा के मंदिर एक ही तरह में निर्मित हुआ है। स्वामी के गर्भालय ऊँचे वृत्ताकारशिखर से विजयनगर वास्तु शिल्पकला शैली से गोलाकार एककलश से सुंदर रूप से बनवाये हैं। चारों ओर शिखर पर दिक्पालक, गरुत्मंत प्रतिमाओं से अलंकृत किया गया है। गर्भालय के ऊपरी छत अष्टभुजि आकार में बनवाये। इस अद्भुत वैकुंठमंदिर में स्वामी ऐश्वर्यपीठ पर विराजमान होकर पूजाएँ स्वीकार कर रहे हैं। स्वामी के गर्भालय को अंतराल है। अंतराल चार चतुरस्राकार खंभों पर है। ४० कदम लंबाई, ३० कदम चौडाई से रहे १६ खंभों पर नवरंग मंटप सुंदर शिल्पों को विजयनगर शिल्पकला रीति में बनवाये गये हैं। इस मंटप में गर्भालय के पहले भाग में द्वारपालक जयविजयों को प्रतिष्ठित किये हैं।

माताजी का मंटप

स्वामी मंदिर के निर्माण के सौ साल के बाद माताजी का मंदिर बनवाये हैं। स्वामी मंदिर की दक्षिण दिशा में माताजी का मंदिर भी निर्माण करके अनुसंधान किया हुआ है। इसमें भी अंतराल, नवरंग मंटप हैं। कल्याणमंटप भी है। इतनी महत्तर मंदिर में माताजी ऐश्वर्य पीठ पर बैठकर भक्तजनों को दर्शन देकर पूजाएँ स्वीकार कर रही हैं।

दशावतारमंटप

इस प्रधानमंदिर में पहुँचने के लिए तीन द्वार पार करके जाना है। पहला चार खंबों का मंटप (नालुगुकाल्लमंटप) दूसरा गालिगोपुर, तीसरा महामुख मंटप, महामंटप गिर जाने के बाद उसे दशावतार मंटप के रूप में रूप-रेखाएँ बदल दिए हैं। इसका दूसरा नाम ही अभिनवरंग मंटप है। इस मंटप में पश्चिम द्वार पर सिर रखकर सोने की भंगिमा में गणपति, द्वार भर पूरे विनायक की प्रतिमाएँ हैं। प्रधान मंदिर के ईशान्य दिशा में स्वामी की पुष्करिणी है। विजयनगर राजाओं ने तिरुमल स्वामी को जिस प्रकार बनवाये है यहाँ भी इस स्वामी को भी चंदन की लकडी से सुंदर तीन मंजिलों की नगिषी रथ को बनवाये हैं। अन्य

मुख्य वाहनों को भी बनवाये हैं। पाँच मंजिल के बडे रथ को भी बनवाये गये हैं। इस रथ को खींचने के लिए हाथियों का उपयोग करते हैं। हाथियों की सहायता से इस रथ को खींचते हैं।

कीलपट्ला मंदिर के आस-पास रहे पवित्र तीर्थ

इन तीर्थों के नाम बहुत विचित्र सा रहता है। वे तिरुमलपहाडों में रहने के जैसे इन जंगलों में भी कई पवित्र तीर्थ, पुष्करिणियाँ हैं। वे मलगंगनबावि, जोन्नारुपोलुबावि, रेड्डिबावि, पिल्लोनि चेलिमि, तातदान, नागिरेड्डिबावि, नलमनायुनि चेरुवु, पेनु देवुलबावि, कोतुलबावि, सलींद्रालदोना, अनुपोंका, भैरवबावि, दोणिवंका चेरुवु, यापमाकुलदोना, देवतलदोना, अक्कम्मदोना, मंगलोनिबंडदोना, पालमंदरंगन्नबावि, पंदिवादमुबावि, दोनगुट्टबावि, पातबंडदोना, बोडिबंडदोना, वड्नालदोना, वीरदोना, नागिरेड्डिदोना, पेंड्लिबंडदोना, कल्लिबंडदोना, सामिरेड्डि बावि, कडपदोना, परिविदोनवंटि दोनलु, तीर्थ प्रकृति सिद्ध, महत्य रूप से सृष्टि में आकर इस प्रकृति माता की गोद में बसी है।

पेनुदेवुल समीप में आदिमानवों के निवास (पांडवों के मंदिर) समाधिगृह (भूगर्भसमाधियाँ) जैसे प्राचीन चिह्न जंगल में कई जगह हैं। ऐलक (पानी के चलम) वे निरंतर पानी में रहनेवाले सरोवर हैं। कीलपट्ला एक समय प्रमुखपट्टण के रूप में बाजारों के बाजार के रूप में प्रसिद्ध होकर अपनी आधिक्यता को देश के इतिहास में निरूपित किया है।

श्री कोनेटिरायस्वामी को किये जानेवाली पूजाएँ और उत्सव

कीलपट्ला स्वामी का संकल्प सौरमान के अनुकूल किया जाता है। वैखानस आगमशास्त्र के अनुकूल नित्य उदयास्तम की पूजाओं का निर्वहण होता है। वंशपरंपरा के अनुसार मिरासि अर्चक पूजाओं का निर्वहण किये जा रहे हैं। उत्सव शास्त्रानुसार आचारों के अनुरूप किया जाता है। ज्यादा सेवाएँ, पूजाएँ तिरुमल के जैसे ही होता है। इस दिशा में वैकुंठवास को सुप्रभात सेवा, सहस्रनामार्चना, शाम के समय अष्टोत्तर नामार्चना किये जाते हैं। हर साल वसंतऋतु में चैत्रमास में शुद्ध त्रयोदशी, चतुर्दशी, पूर्णिमा के दिनों में उत्सवमूर्तियों को वसंतोत्सव होता है। और तोमालसेवा, श्रवणानक्षत्र में स्वामी के जन्मदिनोत्सव, चतुर्दशी के दिन श्रीवारि कल्याणोत्सव किये जाते हैं। कीलपट्ला में भी हर साल माघशुद्ध सप्तमी के दिन रथसप्तमी का उत्सव निर्वहण किये जाते हैं। उस दिन स्वामी सूर्यप्रभावाहन पर जुलूस निकलते है। तिरुमल के जैसे हर साल वैशाखमास में शुद्ध अष्टमी से लेकर बहुल तदिया तक ग्यारह दिनों तक ब्रह्मोत्सव किये जाते हैं।

यहाँ ब्रह्मोत्सव स्वस्ति वाचन से शुरू होकर अंकुरार्पण से, अंतिम दिन पूर्णाहुति, चक्रतीर्थ से समाप्त होता है। साल में चौथे महिने में अष्टमी के दिन अंकुरार्पण, नवमी के दिन ध्वजारोहण, दशमी के दिन सिंहवाहन, एकादशी के दिन शेषवाहन, द्वादशी के दिन हनुमंतवाहन, त्रयोदशी के दिन गजवाहन, चतुर्दशी के दिन कल्याण, गरुडोत्सव, पूर्णिमा के दिन ब्रह्मरथोत्सव, पाड्यमि के दिन मोहिनी उत्सव, विदिया के दिन वसंतोत्सव, हंसवाहन, तदिया के दिन द्वादशाराधना, ऊँजलसेवा, शयनोत्सवों से ब्रह्मोत्सवों की परिसमाप्ति होती है। साल में एक बार होनेवाले ब्रह्मोत्सवों में बडे रथ पर स्वामीजी जुलूस निकलते हैं। धनुर्मास में शुद्ध एकादशी के दिन वैकुंठ एकादाशी पर्वदिन का निर्वहण भी होता है। तिरुमल के जैसे स्वामी को पार्वेट उत्सव किये जाते हैं। इस उत्सव में स्वामी को टपाकों के साथ उत्सव मनाते हुए, मृदंगवायिद्यों से पार्वेटमंटप तक ले आते हैं।

इस संदर्भ में एक खरगोश को लाकर पूजा करके शमी वृक्ष के पास खेतों में छोडना सांप्रदाय है। इस प्रकार स्वामी रथसप्तमी के दिन कृष्णम्मागुट्टा तक, विजयदशमी के दिन पार्वेटमंटप तक पहुँचते हैं।

नित्य सुबह सुप्रभात सेवा, अर्चना, नित्यार्चना, नित्यनैवेद्य, शतनामार्चना, सहस्रनामार्चना किये जाते हैं। तीर्थ प्रसाद का विनियोग होता है।

शाम के समय साधारण पूजा, अर्चना, एकांत सेवा, निर्माण होता है। हर शुक्रवार अभिषेक रहता है। वैशाखमास में शुद्ध अष्टमी से लेकर बहुल विदिया तक दीपाराधना, मूलस्तंभ (खंभ) पर आकाशदीप (मेलुदीप) रखते हैं।

कीलपट्‌ला स्वामी के अद्भुत और महिमाएँ

१.'चक्रस्थापन' कथा

श्रीरंगराय ने तिरुमल के जैसे कीलपट्‌ला में भी सब पूजापुनस्कार, उत्सव, वाहन सेवाओं का निर्वहण करने का निर्धारण करके मान्य देकर शिलाशासन बनवाये हैं।

एकबार नलसानिगाँव के बोडिकोंडमनायुडु को स्वामी सपने में आकर कहा कि अर्चकों ने कीटक, छोटे कंकड, से भरा, नैवेद्य रख रहे हैं इसलिए मैं उसे स्वीकार नहीं कर पा रहा है। दूसरे दिन उग्र होकर बोडिकोंडमनायुडु ने अर्चकों को बुलाकर डरादिया कि- ''नैवेद्य में कंकड, कीटक कैसे आ रहे हैं? यदि इस बार भी ऐसे ही आये तो आपको फाँसी चडादूँगा। इस बार भी स्वामी ने सपने आकर कंकड, कीटक आने की बात कही है। यह सुनकर बोडिकोंडमनायुडु ने उस प्रसाद को उन्होंने भी खाकर, अपने साथ रहे प्रमुखों को भी खिलाकर मान लिया कि यह सच है। हे! भगवान! इस अपचार के कारण ही उसे भगवान की कृपा नहीं मिली है। इसी चिंता से क्रोधित होकर उन अर्चकों को बुलाकर लकडी से खूब मारा। इस अपमान भार से अर्चकों ने रातों-रात ही मूल-विग्रह के नीछे प्रतिष्ठित ''चक्रस्थापन'' (जनाकर्षणयंत्र) को लेकर तिरुमल पहुँच गये हैं। यहाँ रहे ''श्रीचक्रयंत्र'' तिरुमल में प्रतिष्ठित करने से तब तक नाममात्र पूजाएँ होने वाले तिरुमल मंदिर दिन-ब-दिन बढती गयी।

२. सफेद हाथी की कहानी

एकबार बोडिकोंडमनायुडु ने अपने कष्टकाल में वेंकटेश्वर स्वामी को सफेद हाथी पर जुलूस निकालने के लिए एक मनौती किया है। इससे उसका कष्ट दूर हुआ और उसने सोचा कि भगवान की कृपा से ही उसका कष्ट दूर हुआ। इस खुशी से उन्होंने भगवान को उत्सव करने केलिए तैयार हुआ। बेचारा बोडिकोंडमनायुडु ने भ्रम में पड गया कि - जिस प्रकार सफेद घोडे रहने के जैसे सफेद हाथियाँ भी रहेंगे। कई देशों में खोज निकालवाया। लेकिन सफेद हाथी कहीं भी नहीं दिखाई पडा। अंत में वह ब्राह्मणों से विचार किया। इससे ब्राह्मणों ने सलाह दी कि काले हाथी को ही चूना से भरवा दो। उसी प्रकार उन्होंने स्वामी को उस हाथी पर अंगरंगवैभव के साथ जुलूस निकालवाया।

इससे स्वामी बहुत नाराज (क्रोधिक) होकर उसको सपने में दिखाकर शाप दिया कि- ओरी! मुझे ही धोखा दोगे! काले हाथी को चूना लपेटकर (से भराकर) सफेद हाथी समझाकर मुझे जुलूस निकलवा दोगे। इसलिए तुम्हारे वंश क्रमशः सात परंपराओं तक अंत हो जायेगा। इस प्रकार कालगर्भ में अंत हुआ है। इतना ही नहीं जन वाक्य है कि - जिस परिवार ने स्वामी को द्रोह किया उन सारे परिवार भी अंत हुआ है।

विग्रह विशिष्टताएँ

वेंकटेश्वरस्वामीजी दुनिया भर में एक ही है। लेकिन अब तिरुमल-कीलपट्‌ला वेंकटेश्वरों में फरक इतना ही है कि- तिरुमल में स्वामी 'गिरिक्षेत्र' में दर्शन दे रहा है, तो कीलपट्‌ला में स्वामी 'वनक्षेत्र' में वर दे रहे हैं। तिरुमल मंदिर में, विशेष स्वर्णाभरण अलंकारों से प्रकाशित हो रहे है, तो कीलपट्‌ला में अत्यंत गरीब के रूप में केवल पुष्पालंकारों से दर्शन दे रहा है। कीलपट्‌ला में छोटे पादपीठ पर विराजमान हो, तो तिरुमल में पवित्र पद्मपीठ पर पूजाएँ ले रहे हैं। कीलपट्‌ला प्रयाण सादा-सीधा रहता है। तिरुमल श्री वेंकटेश्वर स्वामी का संदर्शन पहाडों पर प्रयाण करने का एक अद्‌भुत प्राकृतिक दृश्यों की अनुभूति है। कीलपट्‌ला आलय को तिरुमल तिरुपति देवस्थान ने १८-११-२०१२ के दिन अपने अधीन में लाया था।

इतनी प्रसिद्धि, विशेषप्राशस्त्य रहे श्री कोनेटिरायस्वामी का दर्शन करके पुनीत हो जायेंगे।

''कोनेटिरायदेवाय भक्तानुग्रहकारिणे
कीलपट्‌ल निवासाय श्रीनिवासाय मंगलं''

सत्संग और भक्ति

- श्री अंकुश्री

मनुष्य अपनी समस्याओं को निपटाने में व्यस्त रहता है। समस्याएँ जब बढ़ जाती हैं और व्यस्तता के कारण उनका निष्पादन नहीं हो पाता तो मन बोझिल हो जाता है। समस्याएँ प्रति दिन उठती हैं। इसलिये समस्याओं और व्यस्तताओं के चलते मन का बोझ बढ़ता जाता है। मन में यह चिन्ता बनी रहती है कि कोई आवश्यक कार्य छूट नहीं जाये। मन में चिंता बनी रहने के बाद भी व्यस्ततावश उसे निपटा पाना संभव नहीं हो पाता। कौन काम पहले करें और कौन काम बाद में, कोई आवश्यक काम छूट नहीं जाये तथा छूट गये कामों को कैसे पूरा किया जाये - ऐसी उलझनों में मन तनाव में रहने लगता है। तनावग्रस्त हो जाने के बाद कार्यों की निष्पादन-क्षमता कम हो जाती है। इससे वांछित कार्य नहीं हो पाता और तनाव बढ़ता जाता है।

सामान्य कार्यों के निष्पादन में आम आदमी तनावग्रस्त नही होता, या कम होता है। बल्कि भौतिक सुख-सुविधाओं को जुटाने के लिये परेशान रहने की स्थिति में तनाव अधिक बढ़ता है। तनावग्रस्त रहने की आदत बन जाने के बाद कार्यों का बोझ नहीं रहने पर भी कल्पित समस्याओं के बोझ से मनुष्य तनाव से जकड़ा रहने लगता है। दूसरे शब्दों में तनाव में रहना उसकी आदत-सी बन जाती है।

सत्संग इसी तनाव को कम करता है। जितनी देर तक सत्संग में बैठने का सुअवर मिलता है, उतनी देर तक मन में दूसरी बातें नहीं आ पातीं। लेकिन इसके लिये सत्संग में मन लगाना आवश्यक है। अर्थात् सत्संग में उपस्थिति मात्र तन से ही नहीं, मन से भी होनी चाहिये। तभी इसका सही लाभ मिल पाता है।

ऐसा देख जाता है कि सत्संग का आयोजन प्रायः एक धार्मिक कार्यक्रम के रूप में किया जाता है। उसमें धर्म की बातें भी की जाती हैं। बल्कि धर्म की बातें ही सत्संग में अधिक होती हैं। सत्संगकर्ता द्वारा सत्संग के बीच में भजन की कुछ पंक्तियां गायी-गवायी जाती हैं। सत्संग में बैठे हुए लोग कुछ देर के लिये धार्मिक माहौल में आ जाते हैं। उसके बाद सत्संग फिर आगे बढ़ जाता है।

धार्मिक पंक्तियों के गाने-गुनगुनाने और लगातार बैठ कर सुनते रहने के बावजूद सत्संग में शामिल सभी लोगों का धार्मिक होना आवश्यक नहीं है। इसके कई कारण हैं। सत्संग में कुछ लोग स्वेच्छा से सीखने-समझने और भक्ति-भावना से आते हैं। कुछ लोग अपने मित्रों के साथ आ जाते हैं। कुछ लोग समाज में अपना धार्मिक स्तर बनाने के प्रयास हेतु सत्संग में आते हैं, ताकि वे भी सत्संग में अपनी उपस्थिति की समाज में चर्चा कर सकें। ऐसे लोगों में पुरुष भी हैं, लेकिन महिलाओं की संख्या अधिक है। ऐसे ही कुछ लोग सत्संग के दौरान बातचीत करने लगते हैं और दूसरे श्रोताओं को भी बाधा पहुंचाते हैं। लेकिन धीरे-धीरे ऐसे श्रोता भी सत्संग का अनुशासन सीख लेते हैं।

सत्संग सुनने में रोचक लगता है। श्रोता उस रोचकता में तल्लीन हो जाता है। रोचक प्रसंगों के कारण कुछ लोग सत्संग में जाते हैं। किन्तु रोचक प्रसंग में रुचि लेना भक्ति नहीं है, क्योंकि धर्म या धार्मिक कार्य रुचिकर हो सकता है, लेकिन हर रुचिकर कार्य (या प्रसंग) धार्मिक नहीं हो सकता। इस बात को हम इस तरह भी कह सकते हैं कि चूंकि सत्संगी का धार्मिक होना आवश्यक नहीं है, इसलिये सत्संग में जुटने वाली भीड़ धर्म का द्योतक नहीं है।

भक्ति के लिये सत्संग की तरह ही शरीरिक और मानसिक शुद्धता आवश्यक है। जिस तरह मानसिक शुद्धता के लिये सत्संग, स्वाध्याय और ध्यान आवश्यक है, उसी तरह शारीरिक शुद्धता के लिये उपवास और सादगीपूर्ण भोजन आवश्यक है। कुछ लोग पर्व-त्योहार आदि के मौके पर उपवास करते हैं। यह शारीरिक शुद्धि की एक आवश्यक प्रक्रिया है, जिसे हिन्दू धर्म में बहुत प्रमुखता दी गयी है, क्योंकि स्वस्थ और शुद्ध शरीर में ही स्वस्थ और शुद्ध मन

का वास होता है। जैसा कि स्पष्ट है, सत्संग में बैठे हुए सभी लोग भक्त नहीं होते। लेकिन इस बात को स्वीकार करने में किसी को संकोच नहीं होना चाहिये कि सत्संग में जाते रहने वालों में भक्ति-भावना बढ़ जाती है। सत्संग में बैठने से मन को इधर-उधर भटकने से रोकने और नई-पुरानी बातें सुनने का मौका मिलता है, जिससे मन को शांति मिलती है।

सत्संग भक्ति का एक माध्यम है, भक्ति नहीं। हां, सत्संग से मन शांत होता है और शांत मन से किया गया हर कार्य, भले वह भक्ति ही क्यों न हो, सही ढ़ंग से संपादित होता है। शांत मन से सुनी हुई बातों का प्रभाव कारगर होता है। इसलिये सत्संग के प्रति श्रद्धा ही भक्ति है। श्रद्धा और भक्ति से विश्वास बढ़ता है। विश्वास का आत्मविश्वास से गहरा संबंध है। अपने कार्य क्षेत्र में आगे बढ़ने वाला हर व्यक्ति सबसे पहले आत्मविश्वासी होता है। अर्थात् आत्मविश्वास से अपने कार्य क्षेत्र में आगे बढ़ने का सुवसर प्राप्त होता है। कुछ व्यक्तियों में आत्मविश्वास जन्मजात होता है। लेकिन कुछ लोगों में इसका अभाव होता है। जिन व्यक्तियों में आत्मविश्वास का अभाव होता है, उन्हें अपने प्रयासों द्वारा उसे बढ़ाना आवश्यक है। यह कार्य सत्संग बखूबी पूरा करता है। सत्संग का असर हमेशा धनात्मक होता है। सत्संग करने वाले वक्ता या महात्मा के व्यक्तित्व (एवं कृतित्व) और व्यवहार का श्रोताओं पर पूर्ण असर पड़ता है। इसके लिये वक्ता के आचरण की शुद्धता, उनकी व्यवहार-कुशलता और भगवान के प्रति उनका समर्पण या भगवान के प्रति उनकी आस्था का होना बहुत आवश्यक है। ऐसा नहीं कि सत्संग किया, थैला लिया और दूसरे सत्संग-मंच की तलाश में निकल पड़े। यह गतिविधि धार्मिक नहीं, व्यवसायिक है। ऐसे पूर्ण व्यवसायिक वक्ताओं का श्रोताओं पर असर भी धार्मिक कम, व्यवसायिक अधिक पड़ता है। धर्म या भक्ति के उत्थान के लिये ऐसे वक्ता उपयुक्त नहीं माने जा सकतें। प्रवचनकर्ताओं को शहर में मंचासीन करने की व्यवस्था वहां के व्यवसायियों द्वारा ही अधिकतर किया जाता है। आज के बड़े-बड़े प्रवचनकर्ताओं के साथ उनकी टोली चलती है। वे तरह-तरह की विक्रय-सामग्री साथ लेकर चलते हैं और उन्हें सत्संग स्थल के पास बिक्री हेतु प्रदर्शित करते हैं।

सत्संग को जो वक्ता धर्म और व्यवहार से जोड़ कर देखते हैं, वे भक्ति के लिये उपयुक्त स्थिति बनाते हैं। ऐसे संत सत्संग को दिखावा और व्यापार से अलग रखते हैं। यही कारण है कि ऐसे सत्संग से अनेक व्यक्तियों को लाभ मिलता है। सत्संग में भक्तिहीन व्यक्ति को भी भक्ति में लीन करने की अद्भुत क्षमता होती है। वस्तुतः सत्संग है ही ऐसी चीज कि इसके माध्यम से व्यक्ति के बहुमुखी विकास का मार्ग प्रशस्त हो जाता है।

सत्संगत्वे निस्संगत्वं
निस्संगत्वे निर्मोहत्वम्
निर्मोहत्वे निश्चलतत्वं
निश्चलतत्वे जीवन्मुक्तिः

सज्जनों के सांगत्य से मानसल मोह दूर होता है। इससे सांसारिक बंधनों का मोह ढीला पड जाता है। मोह-भ्रांति जब दूर होते हैं, तब 'सत्य' पर निश्चल तत्व तय होता है। यही निश्चल तत्व जीवन मुक्ति को प्रदान करता है।

'मंदिर' पुजारी व्यवस्था (अर्चकाचार्य)

- डॉ.एस.पी.वरलक्ष्मी

पुजारी भगवान की अर्चनादि कार्यक्रम करते समय कई रूपों को धारण करता है। आवाहन करते समय आचार्य गुरु रूप का धारण करता है। स्वामी को अभिषेक करते समय, सजाते समय मातृदेवी का रूप धारण करता है। माता जिस प्रकार अपनी संतान को स्नान कराकर अलंकार करती है उसी प्रकार भगवान को सजाता है अर्चकस्वामीजी। नैवेद्य, धूप, दीप आदि समर्पण करते समय मंत्र रूप का धारण करता है। भगवान को मंत्र पूर्ण निवेदन को स्वीकृत करके उसे प्रसाद (अनुग्रह) हमें प्रदान करता है।

देवालय के प्रमुख व्यवस्थाओं में अर्चक व्यवस्था एक है। पूजा के तरीके परंपरागत आचरण निरंतर उत्सव आदि विषयों में देवालय की महानता, गौरव को बढाने में अर्चकस्वामी का स्थान प्रधान है। सिर्फ अर्चनायें उत्सवों को मनाना ही नहीं देवालय को निर्देश करनेवाले गुरु एवं आचार्यों के रूप में उन्होंने नाम कमाये।

पूजा की विशेषता - अपने आप का उद्धरण के लिए करनेवाली पूजा आत्मार्थ पूजा मानी जाती है। हर एक गृहस्थ ऐसी पूजा गृह में निर्वाह करता है। लोकहित के लिए, पूजा रक्षण के लिए मंदिरों में करनेवाली पूजा परार्थ पूजा मानी जाती है। मंदिर में अर्चक ही भक्तों की ओर करके उस फल को आशीर्वाद के रूप में प्रदान करते हैं।

इस प्रकार के अर्चनाओं को केवल आगम शास्त्र ही आधार हैं, यह निस्संदेह की बात है कि आगम शास्त्र का अध्ययन करके करनेवाली अर्चना से ही मूर्ती में शक्ति सैकडों गुना बढकर भक्तों को कल्पवृक्ष के रूप में खडा रहता है।

शैवागमनों का कहना है कि ये पुजारी सचमुच भगवान के द्वारा ही उत्पन्न हुए हैं। इनको आत्मार्थ-पूजा एवं परार्थ पूजा करने का दोनों ओर अधिकार है। आगमों का आदेश है कि इनको शिव स्वरूप ही भावना करना चाहिये। सदाशिव की वाणी है कि अर्चन किया गया मुझे अर्चन करनेवाला अर्चक के बीच भेद नहीं है। यदि वह स्थिर रहता तो पुजारी हिलनेवाला है अतः पुजारी भी दैव है। यदि ऐसा नहीं हो तो भेद भाव से देखने पर नरक में जाते हैं।

आगम शास्त्र वाणी है कि पुजारी का तप, योग, अर्चना इनके फलस्वरूप ही उस बिंब में या लिंग में देवता सान्निध्य होता है।

शिवालय के अर्चकस्वामी पांच तरह के कहे जाते हैं। इनको ही पंचाचार्य कहते हैं। आचार्य, अर्चक, साधक, अलंकृत माने सजानेवाला, वाचक ये पांच लोग अर्चना संबंधी पांच विभागों के विधिनिर्वाह करते हैं।

आचार्य आगमों के विषयों को जब तभी अवलोकन करते हुए उस कालावधि के अनुसार अर्चनायें, उत्सव, विशेष कार्यक्रमों का आचरण करता रहता है। अर्चक नित्यपूजादि कार्यक्रमों का निर्वाह करता है। सजावट करनेवाला अर्चना के बाद भगवान की मूर्ति को अलंकृत करके भक्तों को भगवान को दर्शन से नेत्रानंद कराता है। साधक पूजा सामग्री जब कभी देता रहता है। वाचक पूजा कार्यक्रम होते समय उस संदर्भ के अनुसार वेद मंत्रों का (पारायण) पठन करता है। आज भी यह संप्रदाय कई बडे देवस्थानों में कुछ प्रांतों में ही दिखाई पडता है।

पुजारी अर्चनादि कार्यक्रम करते समय कई रूपों का धारण करता है। आवाहन कहने पर आचार्य गुरु रूप का धारण करता है। अभिषेक, अलंकार करने पर मातृ रूप धारण करे माँ बच्चे को स्नान कराके कैसे अलंकार करती है उसी प्रकार भगवान का होता है। नैवेद्य, धूप, दीप आदि समर्पण करते समय मंत्र रूप धारण करता है। भगवान मंत्रपूर्ण किये हुए निवेदन स्वीकृत करके उसे प्रसाद के रूप में हमें (अनुग्रह) प्रदान करता है।

अर्चना पूरा होने के बाद पुजारी भक्त के जैसे भगवान की स्तुति करता है। प्रदक्षिणा करता है। तब तक भगवान के समान पूजा पूरा किये अर्चक अंत में आते समय हृदयपूर्ण उस भगवान की स्तुति करके कई उपचारों से भगवान को संतोष कराता है।

अर्चक व्यवस्था में उनको सहयोग देने के लिए परिचारकों का नियामक हुआ है। वे नैवेद्य आदि तैयार करके सदा अर्चकों के (अनुगुण) अनुसरण करते रहते हैं।

साभार - श्रीशैलप्रभा

आचार्य का जवाब

- श्रीमती आर.प्रेमारामनाथन

वह एक छोटासा गाँव था। उस गाँव में वीरेंद्र जुलाहे का काम करता था, धीरेंद्र खेती का काम करता था और राजेंद्र मिट्टी का बर्तन बनाने का काम करता था। वे तीनों बचपन से ही गहरे मित्र थे। घर में कोई उत्सव हो या मंदिर में कोई मेला, वे तीनों मित्र एक साथ मनाते थे। वे तीनों अपने धंधे के प्रति संतुष्ट नहीं थे। जब वे तीनों एक साथ मिलते तब, वे अपने धंधे के बारे में असंतुष्ट भाव प्रकट करते थे।

जुलाहा वीरेंद्र अपने मित्रों से कहता था,''भगवान ने मुझे क्यों यह धंधा दिया है? रोज-रोज कपास, धागा, करघा इसी में मेरा जीवन पिसता जा रहा है। करघे में काम करते-करते मेरे पैर और हाथ में असहनीय दर्द हो रहे हैं। इस काम में मेरी आँखों की चमक भी कम होती जा रही है। मैं समझता हूँ कि तुम दोनों की स्थिति तो मुझसे अच्छी है।''

यह सुनकर किसान धीरेंद्र ने कहा, ''मित्र, तुम्हारे धंधे की समस्या को मैंने समझ लिया। मेरा धंधा तो उससे भी अधिक समस्यापूर्ण है। मैं लोगों को खाने के लिए दाने पैदा करता हूँ। लेकिन उसके लिए कीचड में सदा रहता हूँ। भारी हल उठाकर और बैल को हाँककर खेत जोतता हूँ। बीज बोने से लेकर फसल काटने तक मेरी रीड की हड्डी टूट जाती है। कठोर परिश्रम करते-करते मेरे हाथ और पैर काट की तरह कठोर बन गये हैं। मैं हमेशा यही सोचता हूँ कि भगवान ने मुझे क्यों ऐसा काम दिया है?''

दोनों मित्रों की बातें सुनकर कुम्हार राजेंद्र ने कहा, ''मित्रों! तुम दोनों की बातों से मालूम हो गया कि, तुम लोगों के धंधे में कितनी कठिनाइयाँ हैं। मेरा धंधा भी उतना आसान नहीं है। एक मिट्टी का बर्तन बनाने के लिए अनेक कष्टों को पार करना पडता है। चिकनी मिट्टी लाकर बर्तन बनाने योग्य करने के लिए उसमें पानी मिलाकर पाँव से घिसना पडता है। तब पाँव में कठोर दर्द होता है। मेरा काम वहाँ तक खतम नहीं होता। उस मिट्टी को चक्र में रखकर घुमाना पडता है। तब बर्तन का रूप देने के लिए सावधानी से काम करना पडता है। उसके बाद उसे बाहर निकालकर आग में तपना पडता है और फिर सूरज के कठोर धूप में सुखाना पडता है। ऐसा काम करते-करते मेरे शरीर भर में गंदगी चढ गयी। मैं यही सोचता हूँ कि भगवान ने मुझे मिट्टी में ही पिसने का जीवन दिया है।'' इस प्रकार जब ये तीनों

एक साथ मिलते थे तब-तब अपने धंधे के बारे में निराश भाव प्रकट करते थे। एक बार आचार्य नामदेव उस गाँव में आये थे। वे वहाँ के एक छेटे मंदिर में ठहरे थे। गाँव भर के लोग उनके दर्शन के लिए जाते थे। वे तीनों मित्र भी एक साथ उनके दर्शन के लिए गये थे। वे तीनों आचार्य से मिलकर एक स्वर में कहने लगे, ''महाप्रभु! हम तीनों जुलाहे, किसान और कुम्हार हैं। हम अपने धंधे से अधिक परेशान और निराश हैं। हम जानना चाहते हैं कि इस दुनिया में सदा सुख देने वाला कोई धंधा है? आप बडे तपस्वी और ज्ञानी हैं। कृपया आप हमारे संदेह को दूर कीजिए।''

आचार्य ने उन तीनों की बात को गौर से सुना। उसके बाद उन्होंने उनको देखकर सवाल किया, ''आप लोगों को अपने धंधे के बगैर और कोई काम करना मालूम है?'' तीनों ने एक स्वर में कहा, महान, हम अपने धंधे के सिवाय और कोई काम करना नहीं जानते।

यह सुनकर आचार्य ने उनको देखकर फिर एक सवाल किया, ''कपडे, दाने, मिट्टी के बर्तन ये सब यदि लोगों को अपने आप मिल जाते हैं समझो, तब आप लोगों की स्थिति क्या होगी?'' तीनों ने उत्तर दिया, ''हमारा धंधा रुक जायेगा। हमें अपना जीवन बिताने के लिए भीख माँगकर फिरना पडेगा।''

यह सुनकर आचार्य ने उनको समझाते हुए कहा, ''इस दुनिया में कोई माँग होने के कारण ही आप लोगों का धंधा चलता है। लोग भी अपनी पूर्ति के लिए आप लोगों को ढूँढकर आते हैं। इसलिए इसे ख्याल में रखकर आप लोगों को अपने धंधे से गौरव का अनुभव होना चाहिए। अपने धंधे के प्रति आप लोगों के मन में जो भाव अब है वह बिलकुल अन्याय है।''

आचार्य ने आगे कहा, ''लोगों की माँग को तन-मन से जो लोग पूर्ति करते हैं, वे सुख और संतोष का जीवन बिताते हैं। उनको अपने धंधे के प्रति कभी भी दुःख महसूस नहीं होता। इसके बदले जो अपने धंधे में कमी या दुःख देखते हैं, वे सदा निरुत्साह और असंतुष्ट जीवन बिताते हैं।

आचार्य के जवाब से उन तीनों की आँखें खुल पड़ी। अब उन्हें अपने धंधे के प्रति गौरव की भावना महसूस हुई।

तिरुमल तिरुपति देवस्थान, तिरुपति।

सप्तगिरि चंदादारों के लिए सूचना

सप्तगिरि मासिक पत्रिका पाठकों को हर महीने सही ढंग से पहुँचाने के लिए विविध क्रियाकलाप कार्य कर रहे हैं विषय पाठकगण समझ सकते हैं। इसी विषय के दौरान भक्तों का पता क्रमबद्ध करने के लिए कार्यवाहीन चर्यायें लेते है। पाठकगण इस विषय को दृष्टि में रखकर निम्नलिखित प्रकार अपना संबंधित विवरण प्रधान संपादक कार्यालय को सूचित कीजिए।

१. 'सप्तगिरि' मासिक पत्रिका के बारे में सुझाव/ सूचनाएँ/शिकायतों को sapthagiri_helpdesk@tirumala.org के द्वारा सूचित कीजिए।

२. सप्तगिरि चंदादारों का पता क्रमबद्ध कराने के लिए ०८७७-२२६४५४३ फोन नंबर को चंदादार फोन करके अपना पूरा पता, पिन कोड, मोबाइल नंबर जैसे विवरण कार्यकालीन (सुबह १०.३० से सायं ५.०० के अंदर) समयों में संपर्क करें।

३. उपरोक्त फोन नंबर या वेबसैट sapthagiri_helpdesk@tirumala.org के द्वारा भी अपने विवरण को बता दे सकते हैं।

४. आनलॉइन चंदादार अपने पूरे पते के संबंधित विवरण ति.ति.दे. वेबसैट के द्वारा बता दें।

प्रधान संपादक,

सप्तगिरि कार्यालय, तिरुपति।

तिरुपति एवं उसके आस-पास के दर्शनीय क्षेत्र

श्री गोविंदराज स्वामी मंदिर : आंध्रप्रदेश के चित्तूर जिले में तिरुमल पर्वत के पदभाग में तिरुपति स्थित है। वैष्णवधर्म के प्रवर्तक श्री रामानुज से संबंध रखनेवाला यह पुरातन शहर है। ११३० ए.डी. में प्रख्यात वैष्णवधर्म के प्रवर्तक श्री रामानुज ने श्री गोविंदराज स्वामी मंदिर का निर्माण कर, परिसर के छोटे प्रांत को आवास योग्य बनाकर, उसे 'तिरुपति' का नाम रखा। पुराणों के अनुसार, यहाँ के मूर्ति की वैष्णव सम्प्रदाय के प्रवर्तक एवं महान आचार्य श्री रामानुज ने प्रतिष्ठा की। भगवान तो शयन मुद्रा में है। इस प्रांगण में श्री आण्डाल, श्री पार्थसारथी एवं श्री वेंकटेश्वरस्वामी के मंदिर हैं।

श्री कोदंडराम स्वामी मंदिर : तिरुपति रेल्वेस्टेशन से एक कि.मी. दूरी पर श्रीराम का मंदिर है। लंका से वापस आते वक्त सीता लक्ष्मण सहित श्रीराम के तिरुपति आगमन के स्मरण में इस मंदिर का निर्माण किया गया है। शिलालेख के आधार से १५वीं शताब्दी में सालुव नरसिंह का अभ्युदय के लिए नरसिंह मोदलियार नामक व्यक्ति ने इस मंदिर का निर्माण किया।

श्री कपिलेश्वर स्वामी मंदिर : तिरुपति से तीन कि.मी. दूरी पर भगवान शिव का मंदिर है। कपिल महर्षि द्वारा प्रतिष्ठापित होने के कारण भगवान को कपिलेश्वर और तीर्थ को कपिलतीर्थम् का नाम प्रचलित हो गया है।

अलमेलुमंगापुरम् (तिरुचानूर) : तिरुपति से ५ किलोमीटर दूरी पर यह मंदिर स्थित है। श्री वेंकटेश्वरस्वामी की पत्नी श्री पद्मावती देवी का मंदिर है। कहा जाता है कि तिरुचानूर में विराजमान श्री पद्मावती देवी के दर्शन के बाद ही तिरुमल-यात्रा की सफलता प्राप्त होगी। श्री पद्मावती देवी मंदिर की पुष्करिणी को 'पद्मसरोवर' कहा जाता है। पुराणों के अनुसार भगवती देवी ने इस पुष्करिणी के पद्म में स्वयं अवतार लिया है।

श्रीनिवासमंगापुरम् : तिरुपति से १२ किलोमीटर दूरी पर यह मंदिर स्थित है। ग्राम की आग्नेय दिशा में श्री कल्याण वेंकटेश्वरस्वामी का मंदिर है। पुराणों में कहा गया है कि श्री वेंकटेश्वरस्वामी ने श्री पद्मावती देवी से विवाह करने के बाद तिरुमल जाने के पूर्व कुछ समय तक इस क्षेत्र में ठहरे। १६वीं सती में ताल्लपाक चिन्न तिरुवेंगडनाथ ने इस मंदिर का जीर्णोद्धारण किया।

नारायणवनम् : तिरुपति से लगभग २२ किलोमीटर की दूरी पर आग्नेय दिशा में स्थित मंदिर में श्री कल्याण वेंकटेश्वरस्वामी विराजमान है। इसी पवित्र क्षेत्र में आकाशराजा की पुत्री श्री पद्मावती देवी एवं श्री वेंकटेश्वर स्वामी का विवाह सम्पन्न हुआ था। इस महान घटना की याद में आकाशराजा ने इस मंदिर का निर्माण करवाया।

नागलापुरम् : इस मंदिर में श्री वेदनारायण स्वामी विराजमान हैं। तिरुपति से लगभग ६५ कि.मी. दूरी पर आग्नेय दिशा में यह मंदिर स्थित है। विजयनगर शैली को प्रतिबिंबित करनेवाली यह सुन्दर नमूना है। गर्भगृह में दोनों ओर श्रीदेवी व भूदेवी सहित मत्स्यावतार रूपी श्री विष्णु की मूर्ति विराजमान हैं। मंदिर की विशिष्टता का प्रमुख कारण है, सूर्याराधना। हर वर्ष मार्च महीने में सूर्य की किरणे तीन दिन तक गोपुर से होती हुई गर्भगृह में स्थित मूर्ति को स्पर्श करती हैं। इसे सूर्य द्वारा भगवान की आराधना मानी जाती है। विजयनगर सम्राट श्रीकृष्णदेवराय ने अपनी माता के अनुरोध पर इस मंदिर का निर्माण कराया।

अप्पलायगुंटा : अप्पलायगुंटा में श्री प्रसन्न वेंकटेश्वर स्वामी का मंदिर है। तिरुपति से १५ कि.मी. दूरी पर स्थित है। ब्रह्मोत्सव तथा प्लवोत्सव आदि को बडे पैमाने पर मनाया जाता है। इस प्राचीन मंदिर में श्री पद्मावती देवी एवं आंडाल की मूर्तियाँ विराजमान हैं। कार्वेटिनगरम् के राजाओं से निर्मित इस मंदिर के सामने श्री आंजनेय स्वामी की मूर्ति है। दीर्घकालीन व्याधियों के निवारण के लिए यहाँ विराजमान श्री आंजनेय स्वामी की भक्तों द्वारा पूजार्चना की जाती है।

कार्वेटिनगरम् : तिरुपति से ५८ कि.मी. दूरी पर पुत्तूर के निकट यह मंदिर स्थित है। रुक्मिणी, सत्यभामा सहित श्री वेणुगोपाल स्वामी के दर्शन कर सकते हैं। प्राचीन काल में नारायणवनम् के राजाओं ने इसका निर्वहण किया। हनुमत्समेत श्री सीताराम व लक्ष्मण की एकशिला मूर्ति इस मंदिर में विराजमान हैं।

ईश्वर ही हमारा सच्चा साथी है

- श्री गजानन पाण्डेय

दुःख में हम ईश्वर के करीब होते हैं। उस पल हम उसे बार-बार याद करते हैं, मुख से नाम-स्मरण होता है। जब चारों तरफ विपरीत परिस्थितियाँ हो, अपने भी हमसे परायों सा व्यवहार करें। निंदा, अपमान, प्रताड़ना व अपशब्दों का वार हमें भीतर तक तोड़ देता है - तब हमें लगता है कि 'ईश्वर ही केवल हमारे हैं।' इस असार संसार में कोई अपना है, तो वह है परमपिता परमात्मा। ईश्वर ही हमारे सच्चे मित्र, सखा व मार्गदर्शक हैं। वे जब किसी को एक बार अपना लेते हैं, तो हमारा, वे सदा ख्याल रखते हैं और हमें भी उसकी प्रतीति होती है - ऐसा लगता है वह हमारे एकदम निकट है। परंतु दुःख में ही हम उसे याद क्यों करते हैं? जब वह हम पर सुख की वर्षा करता है, हमें वह सब देता है, जिसकी हम आस लगाये होते हैं - परंतु हम इतने कृतघ्न है कि 'उसकी देन, निस्वार्थ भाव से दी गई सौगात के लिए उसके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना भूल जाते हैं।'

जबकि हर सुबह सूरज - हमारे लिए नये अवसर लेकर आता है। वसंत ऋतु पर वृक्षों पर नयी कोयल ऊग आती है। होली पर उमंग व उत्साह में हम सराबोर हो जाते हैं। ऐसा लगता है, प्रकृति नृत्य कर रही है। हमें उसके सानिध्य में अपूर्व आनंद की अनुभूति होती है।

उस क्षण, हमें यह तनिक भी एहसास नहीं होता कि 'यह किसने दिया है। इस संसार को चलानेवाला वह परमात्मा ही तो है।' अतः उस दुःख में जब हम उसे अपने भीतर महसूस करते हैं तो दूसरे क्षण-उसे क्यों भूल जाते हैं? उस घड़ी में, जब हमारी अपने दोषों पर नज़र पड़ती है या आत्म-विश्लेषण की घड़ी में हमें जो आध्यात्मिक अनुभूति होती है - उसका एहसास भी तो हमें वही दिलाता है।

इस रूप में, दुःख हमारा सच्चा मित्र है, जो हमें ईश्वर से जोड़ता है।

इस संदर्भ में, मेरी कविता 'एहसास' की निम्नलिखित पंक्तियाँ दृष्टव्य है -

सुख से तो
दुःख है अच्छा
याद दिलाए
हर पल उसकी।
जब थाम लेते हैं
हम उसके हाथ
और छोड़ देते हैं, अपने को
उसके सहारे।
तब खेता है, वह हमारी नैया
और हमें एहसास होता है
कि वह यहीं कहीं है।

इस भक्ति के एहसास में आकंठ डूबकर, 'मीरा' को मारने के लिए दिया गया जहर भी अमृत हो गया। 'सबरी' ने प्रभु 'राम' को भाव-विभोर होकर जूठे बेर खिलाए। जन्मांध 'सूरदास' के हृदय में 'श्रीकृष्ण का वास होता था और वे (श्रीकृष्ण) उनकी भक्ति से रीझ कर, उनके साथ खेला करते थे। 'सूरदास' की भक्ति की पराकाष्ठा के दर्शन हमें उनके ग्रंथ 'सूरसागर' में दिखायी देते हैं।

इससे यही सिद्ध होता है कि - 'ईश्वर ही हमारा सच्चा साथी है।'

अर्थात् उसकी शरणागति में ही जीवन का सुख निहित है। उसके साथ जुड़कर ही हमें परम शांति व सुख (आनंद) की प्रतीति होगी।

इसका संकेत, श्रीमद्भावद्गीता में भगवान श्रीकृष्ण की वाणी से स्वतः स्पष्ट है-

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।।

(गीता १८/६६)

यानी संपूर्ण धर्मों को अर्थात् सम्पूर्ण कर्तव्य कर्मों को मुझमें त्यागकर तू केवल एक मुझ सर्वशक्तिमान, सर्वाधार परमेश्वर की ही शरण में आ जा। मैं तुझे सम्पूर्ण पापों से मुक्त कर दूँगा, तु शोक मत कर।

इसलिए यदि हम इस असार, क्षणभंगुर संसार के दुःखों से छुटकारा चाहते हैं तो हमें सदैव 'ईश्वर' में ध्यान लगाना होगा।

इस संबंध में कबीर दासजी की सरल वाणी में, यह बात और स्पष्ट हो जाती है -

दुःख में सब सुमिरन करै, सुख में करे न कोय।
जो सुख में सुमिरन करै, तो दुःख काहे को होय।।

तिरुमल तिरुपति देवस्थान, तिरुपति।

'सप्तगिरि', 'स्वर्ण जयंती पत्रिका विशेष' में आलेखों का स्वागत!!

तिरुमल तिरुपति देवस्थान का आध्यात्मिक सचित्र मासिक पत्रिका 'सप्तगिरि' है। कलियुग प्रत्यक्ष दैव श्री वेंकटेश्वर भगवानजी के वैभव एवं तिरुमल क्षेत्र की महानता को हर महीने 'सप्तगिरि' मासिक पत्रिका पाठकों को आलेखों के माध्यम से पहुँचाता है। छः भाषाओं में मुद्रित यह पत्रिका आध्यात्मिक, धार्मिक पत्रिकाओं में विशिष्ट स्थान पायी है।

यह पत्रिका जिज्ञासुओं, महिलाओं व बच्चों... जैसे सभी उम्रवालों के लिए उपयुक्त बनी है। कालप्रवाह में अभिवृद्धि की ओर कदम रखते हुए है। 'सप्तगिरि' मासिक पत्रिका के पाठकों से विनती है कि ''सप्तगिरि पत्रिका को पढ़ने के बाद की अनुभूतियाँ व अनुभव एक लेख के रूप में हमारे कार्यालय में भेजें।'' उनका परिशीलन करके 'सप्तगिरि' में प्रकाशित किया जाएगा।

आपका लेख अगर डाक से भेजना हो, तो - 'प्रधान संपादक, सप्तगिरि कार्यालय, ति.ति.दे. प्रेस कांपौंड, के.टी.रोड, तिरुपति-५१७ ५०७' के पते पर भेजने का कष्ट करें।

हिन्दी में डी.टी.पी. करके मेइल से भेजने के लिए- पेज मेकर अनु-फांट्स में या एम.एस.वर्ड में युनिकोड फांट में भी टैप करके फैल के साथ पी.डी.एफ. फैल भी hindisapthagiri50years@gmail.com मेइल आई.डी. के द्वारा भेज दें।

अत्ति वरदर

तमिल मूल - श्री टी.शक्ति विनायकम्

हिन्दी अनुवाद - श्री के.रामनाथन

स्थल पुराण

एक बार भगवान ब्रह्म ने सत्यव्रत नामक स्थान पर अश्वमेध यज्ञ को प्रारंभ किया। तब वे अपनी प्रथम पत्नी देवी सरस्वती को छोडकर अन्य पत्नियाँ देवी सावित्री और देवी गायत्री के साथ यज्ञ करने लगे। यह जानकर देवी सरस्वती उत्तेजित हो उठी। उसने उस यज्ञ कार्य को भंग करना चाहा। इसलिए वह वेगवती नाम की नदी का रूप धारण कर यज्ञ को रोकने के लिए तेज बहने लगी।

यह जानकर भगवान ब्रह्म ने इस संकट से बचाने के लिए भगवान विष्णु से प्रार्थना की। उनकी प्रार्थना को स्वीकार करके भगवान विष्णु ने तेज बहती आ रही वेगवती नदी को रोकने के लिए शयन रूप में रास्ते के बीच में लेट गये। श्री विष्णु के कार्य से नदी रोक दी गयी और पानी वहीं रुक गया। भगवान ब्रह्म का यज्ञ भी सफलता पूर्वक समाप्त हुआ और यज्ञ कुंड से श्री महाविष्णु प्रकट होकर अपने दिव्य दर्शन भी दिये। इससे प्रसन्न होकर भगवान ब्रह्म की प्रार्थना के अनुसार श्री महाविष्णु ने श्री वरदराज के नाम पर वहीं मन्दिर में बस गये। भगवान ब्रह्म ने अंजीर के वृक्ष से एक मूर्ति बनाकर उसकी प्रतिष्ठा करने लगे।

अत्ति वरदर

भगवान ब्रह्म के यज्ञ से उत्पन्न होने के कारण उनका रूप थोडा परिवर्तित हो गया था। इसलिए उन्होंने आकाशवाणि द्वारा समझाया कि अपने को अनंत तीर्थ में विसर्जित करके सीवरत्ति से मूर्ति को कांचीपुरम में प्रतिष्ठित करें। अब चाँदी से बनायी गयी एक पेटी में शयन रूप में होने वाले भगवान विष्णु अमृतसरस नामक एक तालाब में रह गये। वे अपने शयन रूप एवं खडे रूप के दिव्य दर्शन को अपने भक्त जनों के लिए चालीस साल में एक बार प्रस्तुत करते हैं।

सौ स्तंभों से बनाये गये मंडप की उत्तर दिशा के तालाब में दो मंडप होते हैं। दक्षिण दिशा में होने वाले मंडप के नीचे पानी के अन्दर एक मंडप होता है। वहाँ अंजीर के वृक्ष से बनायी गयी पुरानी मूर्ति में अत्ति वरदर शयन रूप में अपना दर्शन दे रहे हैं। अत्ति का मतलब है अंजीर। आश्चर्य की बात यह है कि यह तालाब कभी नहीं सूखता और इसका पानी भी कभी कम नहीं होता। चालीस साल में एक बार ही यहाँ पानी के अन्दर से मूर्ति भक्त जनों के दर्शन के लिए बाहर लायी जाती है।

इसका दर्शन इसके पहले सन् १९७९ में प्राप्त हुआ था। अब यह स्वर्णिम अवसर इस साल जुलाई प्रथम तारीख से अगस्त १७ तक भक्त जनों के लिए प्राप्त होने वाला है। इस अवसर पर आगम शास्त्रानुसार भगवान की पूजा एवं आराधना बडे धूमधाम से होती है। उस समय भगवान के दिव्य दर्शन के लिए आस-पास के स्थान से ही नहीं बल्कि देश-विदेश से भी लोग बडी संख्या में आते हैं। यह मन्दिर कांचीपुरम से चेंगलपट्टु जाने के रास्ते में बसा हुआ है। इस अवसर पर यह मन्दिर सबेरे ६ बजे से दोपहर १२.३० बजे तक और शाम को ३.३० बजे से रात ८.३० बजे तक भगवान के दर्शन के लिए खुला रहता है।

जुलाई महीने का राशिफल

- डॉ.केशव मिश्र

मेषराशि - काम कार्य, कारोबारी क्षेत्र में बढ़ौत्तरी, नौकरी में अच्छा लाभ होगा। साधुजनों से सम्पर्क बढेगा। पुराने वाद-विवाद बातें सुलझेंगे। व्यर्थ में किसी के साथ समय नष्ट न करें अपने ऊपर ध्यान दे। बाल-बच्चों के ऊपर ध्यान दें स्वास्थ कमजोर हो सकता है।

वृषभराशि - काम-काज में कुछ मन्दे की चाल रहेगी, शत्रुपक्ष प्रबल रहेंगे। सन्तान सुख मिलेगा। जीवन साथी के ऊपर ध्यान दें वरना चिन्ता बढ़ेगी। यात्रा का योग कम है।

मिथुनराशि - यात्रा का योग बन रहा है लाभ योग अल्प है। कारोबार सामान्य रहेगा। भूमि लाभ योग बन रहा है खरीद बेच से सावधानी बरतें, नये वाहन के योग बन रहे हैं। मास मध्य ठीक किन्तु मासान्त कठिनाई भरा रहेगा।

कर्कराशि - यात्रा का योग बन रहा है लाभ योग अल्प है। कारोबार सामान्य चलेगा। विरोधी पक्ष से व्यर्थ वाद-विवाद से बचना चाहिए। सामाजिक प्रतिष्ठा में वृद्धि होगी।

सिंहराशि - मासारम्भ उत्तम होगा। आस-पास की यात्राएँ होगी। यात्रा का फल सुख दायक होगा। स्वास्थ के ऊपर ध्यान रखें मास मध्य में स्वास्थ्य ठीक रहेगा। मासान्त में काम-कारोबार में सन्तोषजनक फल प्राप्ति होगी।

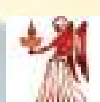

कन्याराशि - काम-कारोबार मन्दा रहेगा। आलस्य बना रहेगा जिससे मन मुटाव की स्थिति बनी रहेगी। व्यर्थ में समय व्यतीत होगा। पारिवारिक लोगों से मनमुटाव कि स्थिति बनी रहेगी।

तुलाराशि - मासारम्भ में धर्म कार्य सम्पादन होंगे। कारोबार सामान्य चलेगा। मास के मध्य में यदि आप नौकरी पेशे में है तो स्थान परिवर्तन अथाव नौकरी में भय कि स्थिति बनि रहेगी। बने बनाये काम में अड़चने महसूस करेंगे।

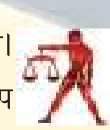

वृश्चिकराशि - वाद-विवाद के भरपूर योग हैं, बचने का प्रयास करें, बदले की सम्भावनाएँ है। स्थानान्तरण के योग हैं। छोटी-छोटी बातों पे कलह बढ़ने के आसार हैं।

धनुराशि - किए-गए प्रयासों में सहज ही सफलता मिलने के योग हैं। यश-मान-कीर्ति-धन की वृद्धि होगी। किसी नजदीकि मित्रों से शुभ समाचार की प्राप्ति होगी। इस मास का लग-भग सारा समय थोड़ी दौड़ धूप के साथ-साथ शुभ रहेगा।

मकरराशि - सरकारी कार्यो में सफलता मिलेगी, अपने प्रिय मित्रों का सहयोग बनेगा, कोर्ट-कचहरी, वाद-विवाद में सफलता मिलेगी। भूमि, वाहन का लाभ मिलेगा। रूके हुए कार्य बनेंगे।

कुम्भराशि - मासारम्भ में गृहस्थी की अधिक चिन्ता बनी रहेगी। मन परेशान हो सकता है जिससे नींद कम आयेंगी। यात्रा के योग बन रहा है। लाभ से अधिक खर्च का योग है।

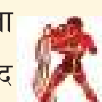

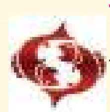

मीनराशि - जीवन में उतार-चढ़ाव की स्थिति बनी रहेगी। किसी भी कार्य को करने में मन न लगेगा। यात्रा के योग कष्टप्रद है। झूठा आरोप लगने की संभावना है अपने ऊपर सचेत रहें।

तिरुमल तिरुपति देवस्थान, तिरुपति

सप्तगिरि

(आध्यात्मिक मासिक पत्रिका)

चंदा भरने का पत्र

१. नाम : ....
(अलग-अलग अक्षरों में स्पष्ट लिखें) ....
....
पिनकोड ....
मोबाइल नं ....

२. वांछित भाषा : ☐ हिन्दी ☐ तमिल ☐ कन्नडा ☐ तेलुगु ☐ अंग्रेजी ☐ संस्कृत

३. वार्षिक / जीवन चंदा :

४. चंदा का पुनरुद्धरण :

(अ) चंदा की संख्या :

(आ) भाषा :

५. पेय रकम :

६. पेय रकम का विवरण :

नकद (एम.आर.टि. नं) दिनांक :

धनादेश (कूपन नं) : दिनांक :

मांगड्राफ्ट संख्या : दिनांक :

प्रांत :

दिनांकः चंदा भरनेवाला का हस्ताक्षर

- वार्षिक चंदा : रु.६०.००, जीवन चंदा : रु.५००-००
- नूतन चंदादार या चंदा का पुनरुद्धार करनेवाले इस पत्र का उपयोग करें।
- इस कूपन को काटकर, पूरे विवरण के साथ इस पते पर भेजें–
- संस्कृत में जीवन चंदा नही है, वार्षिक चंदा रु.६०-०० मात्र है।

प्रधान संपादक, सप्तगिरि कार्यालय, के.टी.रोड,
तिरुपति-५१७ ५०७. (आं.प्र)

नूतन फोन नंबरों की सूचना

चंदादारों और एजेंटों को सूचित किया जाता है कि हमारे कार्यालय का दूरभाष नंबर बदल चुका है और आप नीचे दिये गये नंबरों से संपर्क करें–

कॉल सेंटर नंबर
0877 - 2233333

चंदा भरने की पूछताछ
0877 - 2277777

अर्जित सेवाएँ और आवास के अग्रिम आरक्षण के लिए कृपया इस नंबर से संपर्क करें–

STD Code:
0877

दूरभाष :

कॉल सेंटर नंबर :
2233333, 2277777.

Edited and Published on behalf of T.T.Devasthanams by **Dr.K.Radha Ramana, M.A., M.Phil, Ph.D.,** Chief Editor, T.T.D. and Printed at T.T.D. Press by **Sri R.V.Vijaykumar,** B.A., B.Ed., **Dy.E.O.,** (Publications & Press), T.T.D. Press, Tirupati-517 507.

दि. ११-०५-२०१९ से
दि. १९-०५-२०१९ तक
तिरुपति में संपन्न
श्री गोविंदराजस्वामी का
ब्रह्मोत्सव

महाशेषवाहन पर
उभयदेवेरियों के संग श्री गोविंदराजस्वामी

लघुशेषवाहन पर श्री गोविंदराजस्वामी

हनुमान, हंस और गरुड वाहनों पर श्री गोविंदराजस्वामी

सर्वभूपालवाहन पर श्री गोविंदराजस्वामी

सिंहवाहन पर श्री गोविंदराजस्वामी

कल्पवृक्षवाहन पर उभयदेवेरियों के साथ श्री गोविंदराजस्वामी

तिरुपति की पुरवीथियों में श्री गोविंदराजस्वामी का रथोत्सव

SAPTHAGIRI (HINDI) ILLUSTRATED MONTHLY
Published by Tirumala Tirupati Devasth… 25-06-2019
Regd. with the Registrar of Newspap… "RNI" No.… Postal Regd.No.TRP/11 - 2018-2020
Licensed to post without prepaym… /WPP-04/2018-2020